



MISSION MEDITATION

Established by :

Enlightened Mystic Gurumaiya Dr. Hareshwarideviji

MAUN MANDIR

(A place for silence)

at. & po. Chapad, dist. Vadodara, Gujarat, INDIA

Ph. +91 9913153609, 7285085733

धरणा - १

सूर्योदय दर्शन ध्यान

ध्यान विधि-१

*चढ़ते सूरज की किरणों में
विलीन होकर अनुभव कर लो
आत्मप्रकाश को*

प्रिय साधको !

विश्व का सर्वप्रथम प्रकाश मानव सर्जित नहीं परंतु कुदरत सर्जित है। और वह भी कोई साधारण प्रकाश नहीं परंतु पूरी समष्टि को प्रकाशित करने वाला प्रकाश है। जिसे हम सूर्य प्रकाश नाम से जानते हैं।

सूर्योदय के आगमन का स्वागत पशु-पक्षी से लेकर ऋषि-मुनि तक करते हैं। सौर ऊर्जा से समग्र सृष्टि प्राणवान हो जाती है। मनुष्य देह के प्रत्येक तंत्र पर सौर ऊर्जा का प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है। वैसे तो सूर्य का सनातन रिश्ता समग्र ब्रह्मांड के जीवों से है परंतु मानव और सूर्य का नाता प्रगाढ़ है।

आपको समझाने के लिए यहाँ मैं मनुष्य को तीन विभाग में बाँट रही हूँ – आदि मानव, विकसित मानव और अध्यात्मिक मानव।

आदि मानव सूर्य प्रकाश से केवल अभिभूत हुआ और उसने प्रकाश का अपने अस्तित्व के संदर्भ में उपयोग किया।

मनुष्य जैसे जैसे विकसित होता गया अर्थात् बुद्धि प्रयोगों के द्वारा उसने जब विज्ञान और तकनीकी क्षेत्र में प्रवेश किया वैसे-वैसे उसने सौर ऊर्जा के विकास के नाम पर अपने स्वार्थ के संदर्भ में उसका (सौर ऊर्जा का) ज्यादा से ज्यादा इस्तेमाल किया। सोलर कुकर, सोलर हीटर, और सोलर लाईट तक हम पहुँच चुके हैं। मुझे दिखाई दे रहा है कि निकट भविष्य में मनुष्य सौर ऊर्जा से चलती गाड़ियों का भी इस्तमाल करने लगेगा और सौर ऊर्जा से उड़ने भी लगेगा। परंतु कुदरत का उपयोग करना और कुदरत के प्रति धन्यवाद के भाव से भर जाना इन दोनों में बहुत फर्क है। आदि मानव सूर्य से केवल प्रभावित हुआ, विकसित मानव ने सूर्य का इस्तमाल किया परंतु अध्यात्मिक मानव ने सूर्य की उपासना की। वो जाग्रति के साथ तीनों प्रहर सूर्य के साथ जुड़ा रहा।

हमारे ऋषि-मुनियों एवं योगी-ध्यानियों ने तो सूर्य का महिमा गान स्थान-स्थान पर किया ही है। लेकिन आज के जीव वैज्ञानिकों ने भी वर्षों के अभ्यास के बाद स्वीकार किया है कि प्रकाश और उष्णता से प्राणी का वर्तन नियंत्रित होता है। बेशक, यह सब रहस्यमय है परंतु उन्होंने भी जीव विज्ञान संबंधी नए सिद्धांतों को स्थापित करने के लिए कहा है कि अब कल्पना की सहायता लेने का समय आ गया है। वे लोग जिसे कल्पना कहते हैं उसे हमारे ऋषि भाव और धारणा कहते हैं।

जीव वैज्ञानिकों ने यह भी अभ्यास किया है कि वनस्पति, पशु-पक्षी, जीव-जंतु और मनुष्य पर बांझ वातावरण और ब्रह्मांड की गति का असर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से होता ही है।

पृथ्वी, सूर्य, चंद्र, ग्रह, और तारों की गति परस्पर संबंधित हैं। दिन रात, ऋतुचक्र और ज्वार-भाटा जैसी अनेक कुदरती गति और लय का असर प्रत्येक जीव पर अवश्य होता है।

हमारे ध्यान मार्ग के ऋषिओं ने विश्व में पहली बार सत्य और अनुभूति के आधार पर विज्ञान को धर्म की भूमिका तक लाने का एक क्रांतिकारी प्रयास किया है। यहाँ मुझे मात्र सूर्योदय ध्यान के असर से ही आपको अवगत करना है।

प्राचीन काल से लेकर आज तक बहुत से लोग सूर्यग्रहण की बात को लेकर मजाक उड़ाते हैं। परंतु कुछ वैज्ञानिकों ने २६७ दिन तक लगातार निरीक्षण और अभ्यास करके सिद्ध किया कि सूर्य कलंक के दौरान मानव मृत्यु-दर दुगुनी थी। उन संशोधकों में से डॉ. फाउरे, स्वगोल शास्त्री वालोट और डॉ. सारदो प्रमुख थे। उन तीनों ने भिन्न भिन्न दिशा में जाकर सनस्पोट के असर का अभ्यास किया लेकिन परिणाम समान था।

जापान के डॉ. टाकाटा, रशिया के डॉ. निकोलस और फ्रेंकफर्ट यूनिवर्सिटी के विद्वान डॉक्टरों ने एक वर्ष के सूक्ष्म अभ्यास के बाद घोषित किया कि सूर्य प्रकाश से मनुष्य के रुधिराभिसरण तंत्र में परिवर्तन आता है।

अब विज्ञान इस बात का भी स्वीकार करता है कि सूर्य, चंद्र, अवकाश, इत्यादि सृष्टि पर चुम्बकीय परिवर्तन लाते हैं।

सूक्ष्म रूप से देखा जाए तो हम ब्रह्मांड का अभिन्न अंग ही हैं।

मनुष्य जीवन पर सूर्य का प्रभाव, उसके द्वारा स्वास्थ्य की प्राप्ति, प्रकाश के लाभ और प्रातः होते ही समग्र सृष्टि में प्राणों के संचार आदि को आत्मसात करके कुछ ऋषिओं ने, ज्ञानियों ने, ध्यानियों ने, योगियों ने सूर्य को भगवान के रूप में स्थापित किया। उसके प्रति धन्यवाद बरसते बरसते वह प्रार्थना बन गई। सूर्य के प्रति आभार का भाव पूजा के द्वारा प्रदर्शित होने लगा। अपनी भावनाओं को प्रगट करने के लिए सूर्य नमस्कार और अर्घ्य देना आरंभ किया। उनकी प्रत्येक विधियों के पीछे मनुष्य के कल्याण का भाव जुड़ा था। हर विधि के पीछे कहीं न कहीं अनुभवगम्य वैज्ञानिक सत्य छिपा था। निःसंशय, वे लोग प्राचीन वैज्ञानिक ही थे। परंतु एक खोजी मानस के साथ-साथ उनका हृदय विशेष आस्थावान भी था। खुद से प्रबल विषय, वस्तु और व्यक्ति को वे शक्तिमान तत्व या भगवान के रूप में स्वीकार करके स्थापित कर सकते थे। इसके पीछे उनकी दीर्घ दृष्टि थी, वे चाहते थे कि पूरी मनुष्यता का लय कुदरत के साथ जुड़ा रहे और आस्थापूर्ण तथा संवेदनशील समाज का निर्माण हो। भगवान का अर्थ तथाकथित धर्मों के लोगों ने तोड़ मरोड़ कर गलत कर दिया है। मूल में “भग” संस्कृत शब्द है। भग का अर्थ है शक्ति। भगवान का अर्थ है विशेष शक्ति को धारण करने वाले। मैं कहती हूँ कि यह शक्ति छोटे से छोटे से अणु में भी अंशतः तो है ही। अगर ऐसा नहीं होता तो छोटे से अणु में से अणु-बंब कैसे बनते? इसलिए तो परमात्मा को सर्वव्यापी कहा है। इस तरह से एक अर्थ में आप भी भगवान हैं।

उन ऋषिओं ने शक्तिमान तत्वों के लिए विविध मंत्र भी प्रदान किए, जिनमें से सूर्य मंत्र को हम गायत्री मंत्र के रूप में जानते हैं। गायत्री मंत्र का अर्थ ही यह है कि जो सूर्य सर्व प्राणियों का जीवन है, दुःखों का निवारण करने वाला है, समग्र जगत को उत्पन्न करने वाला और संचालन करने वाला है; हम ऐसे सूर्य नारायण के अत्यंत तेज प्रकाश का ध्यान करते हैं। ऐसे सविता देव हमारी बुद्धि को सत्प्रेरणा दें।

यह प्रेरणा तेजस्वी होनी की, प्रकाशवान होने की, आनंदित होने की, आनंददायक होने की, जीवनदायक होने की और पापनाशक होने की है।

ज्ञान और विज्ञान में बस इतना ही फर्क है कि विज्ञान स्वयं को महान सिद्ध करता है और ज्ञान सत्य को समर्पित हो

जाता है।

इस विश्व में मनुष्य केवल कुछ सत्यों की पुनर्शोध कर सकता है, ज्यादा से ज्यादा वह प्रयोगों के द्वारा कुछ सूक्ष्म चीजों को स्थूल रूप में ला सकता है, उनकी व्याख्या कर सकता है; इससे ज्यादा कुछ भी नहीं।

आध्यात्मिक चित्त ज्ञान के द्वारा ब्रह्मांड के विज्ञान का अनुभव करके उन सत्यों को धर्म में स्थान देता है। परंतु भारत के लिए दुर्भाग्य की बात है कि मनुष्य का कुदरत के साथ का तदात्म्य कम होता गया। उसकी संवेदनाएं कमजोर पड़ गईं। जिसकी वजह से उसके पास प्राचीन ध्यानी या ऋषि जैसा अनुभव नहीं रहा, केवल उनके वचन रहे। बिना अनुभूत वचनों में मनुष्य की आस्था धीरे-धीरे धर्म बन गई। परंतु उसमें सत्यानुभव के अभाव की वजह से वह केवल परंपरा बन गया। और परिणाम यह आया कि उन मुर्दा-धर्मों में से नई पीढ़ी की आस्था उठती गई। एक जमाने में की गई सत्य की बातें भी महौल के अभाव में बकवास या ढोंग लगने लगीं।

मैं चाहती हूँ कि आज का मनुष्य नए मनुष्य के रूप में ध्यान मार्ग से पुनर्खोज का विकास करे, सत्य का अनुभव करे और स्वानुभव के बाद कुदरत के विज्ञान को मनुष्य धर्म के रूप में प्रस्थापित करके समग्र मनुष्यता को जगाए।

यहाँ कोई बने बनाए सिद्धांत की बात मुझे नहीं करनी है। मैं चाहती हूँ कि विधियों के आधार पर आप अपने सत्य को अर्जित कर लो। मेरी बातें, मेरा साथ, मेरा अनुभव आपको हौसला देगा, प्रेरित करेगा, माहौल देगा। ज्ञान की वर्षा तो आपके भीतर की प्यास और आग बढ़ने से ही होगी।

धर्मस्थापना का अर्थ मैं इतना ही करती हूँ कि मनुष्य कुदरत के प्रति संवेदनशील हो और सत्य में उत्सुक और आस्थावान हो।

सूर्य और मानव का आदिकाल से गाढ़ संबंध है। जाग्रति के साथ सूर्य का साक्षात्कार करने से और गहन निरीक्षण से स्वप्रकाश का बोध सहज रूप से घट जाता है। सूर्योदय के समय नवोदित सूर्यकिरणों में आस्था के साथ धन्यवादपूर्ण हृदय से अवगाहन करने से स्वप्रकाश और सूर्यप्रकाश एकरूप बन जाते हैं। यह तदात्म्य का क्षण “मैं” के अस्तित्व के अदृश्य होने का क्षण है। इस बात को आपका अनुभव बनने दो। सूर्यप्रकाश के साथ आत्मप्रकाश में खो जाओ। यही साक्षात्कार का क्षण है, यही स्वयं के परमात्मा का उद्घाटन है, शांति और प्रसन्नता बरसने का अवसर है।

अगर आप अनुभव करते हो कि यह विधि आपके लिए है तो कम से कम २४ मिनिट के लिए इसमें विलीन हो जाओ और सहजता से जो घटता है उसे घटने दो।

धरणा - २

सूर्यास्त दर्शन ध्यान ध्यान विधि-२

*ढलते सूरज के संग डूबकर सीख लो
परम विद्या में प्रवेश करना*

प्रिय साधको!

सूर्य जीवन के प्रत्येक आरंभ और अंत का संदेश देता है और उसके स्वीकार का बोध भी कराता है। प्रत्येक आरंभ के

पीछे एक अंत छिपा है और प्रत्येक अंत के बाद एक नया आरंभ आ रहा है।

मनुष्य को आरंभ अच्छा लगता है, वह अंत से घबराता है। दोनों स्थितियों के स्वीकार की क्षमता सूर्यास्त दर्शन के द्वारा बढ़ती है। अस्त होते सूर्य को लगातार देखने से सहजता से यह क्षमता विकसित होने लगती है। सूर्यास्त भाव ध्यान में सूक्ष्म रूप से अपने सारे अस्तित्व को विलीन होने का बोध घटता है। सब प्रकार के अहंकार सहजता से गिर पड़ते हैं। सहसा शून्यता का अनुभव होता है।

हिल स्टेशनों में आपने देखा होगा, सनसेट पॉइन्ट का बहुत महत्व होता है। लोगों की भीड़ सनसेट देखने के लिए भागती जाती है। पता नहीं कितने लोग सहेतुक या आरंभ और अंत के चिंतन के साथ अथवा जाग्रतिपूर्वक सनसेट देखते होंगे। सनसेट को देखने के लिए भागती हुई भीड़ में ऐसी कोई खास जाग्रति नहीं दिखाई देती है। भेड़िया धसान की भांति प्वाँइट पर जाकर सब बैठ जाते हैं। टूर का स्वर्चा किया है तो चलो हर प्वाँइन्ट देख लें। ऐसे में कुछ लोग पैसा वसूल करते हैं और आनंद खो देते हैं। लेकिन हाँ! उन लोगों में एक बात जरूर होती है, थोड़ा बहुत भी प्रकृति प्रेम। प्रकृति धर्म और अध्यात्म से परे है। एक अर्थ में वह अति धार्मिक और अति अध्यात्मिक है, परम धार्मिक है। प्रकृति के संग में आते ही मनुष्य खुलने लगता है, शांत होने लगता है, भरोसा करना सीख लेता है और साहसी बनता है। प्रकृति कभी कोई आडंबर नहीं करती, ना ही बनावट करती है, ना किसीको ठगती है। वह जो है, जैसी है ऐसी ही प्रतीत होती है और स्वाभाविक रूप से मनुष्य को सत्य का बोध करा जाती है।

सनसेट को देखने वालों में से कितने लोग नाश्वंत की अदृश्यता का अनुभव करते होंगे यह नहीं कह सकते हैं। लेकिन डूबते सूरज के साथ तदात्म्य साध लेने वाले देह, मन, बुद्धि, अहंकार और पद प्रतिष्ठा एवं ऐश्वर्य की निरर्थकता को क्षणभर के लिए भी समझ लेते हैं। ढलता सूरज मनुष्य को उपरति की अवस्था में प्रवेश करा देता है।

मैं आपको सनसेट प्वाँइन्ट पर भाग दौड़ करने वालों में देखना नहीं चाहती हूँ। इस जगत में सबसे मूल्यवान चीजें बहुत सहजता से और मुफ्त में प्राप्त हो जाती हैं। इस अस्तित्व की व्यवस्था ही कुछ ऐसी है। जैसे कि सूरज, चांद, हवा, समन्दर, वृक्ष इत्यादि। परंतु मनुष्य मूर्ख है। मुफ्त में मिली हुई चीज की उसे कोई कीमत नहीं होती है। कुदरत की ओर से मिली हुई बहुमूल्य बरखीश को वह गवाँ देता है और निरर्थक चीजों का मूल्य चुकाता रहता है, जो एक समय छिन जाने वाली हैं। सूरज कुदरत की ओर से एक ऐसी भेंट है कि खुले मैदान में आकर राजा और रंक दोनों बराबर रूप से उसे पा सकते हैं। लेकिन मनुष्य के अंधेपन और दौड़-धूप ने उसे कंगाल बनाए रखा है। मैं आपसे कहती हूँ कि जरूरी नहीं सूर्य दर्शन के लिए आपके पास बहुमंजली हवेलियाँ हों कि आप उसकी छत पर चढ़कर उसे देख सकें। निकल आओ खुले मैदान में या छोटी सी पहाड़ी पर, सूर्य आपके सामने उपस्थित हो जाएगा। सारी प्रकृति आपकी सेवा में खड़ी है। लेकिन मूढ़ मनुष्य उसे लेना ही नहीं चाहता।

मैं आपसे निवेदन करती हूँ कि सनसेट को देखने मत दौड़ो; सूर्यास्त भाव ध्यान करो। डूबता सूरज प्रत्येक की विदाई के अनिवार्य सत्य के बोध के लिए आपको सजग करता है। साथ साथ पुनरागमन का सूक्ष्म संदेश भी देता है। पुनरागमन और विदाई के उपरांत ऊर्जा का अपार स्वरूप रूपांतरण का ही बोध कराता है।

ढलता सूरज मनुष्य को सिखाता है कि आवागमन एक सहज घटनाक्रम है। उपस्थिति की विदाई अंतिम विदाई नहीं है। एक परिचित और अनुभवित विषय, वस्तु या व्यक्ति इस अस्तित्व में नए नए रूप में आती जाती रहती है।

सूर्यास्त जीवन के अस्त की सहज और स्वाभाविक स्वीकृति की प्रेरणा देता है। सूरज के डूबने के वक्त ना तो सूरज चिल्लाता है, ना ही प्रकृति कोई हंगामा मचाती है। पंछी शांति से अपने अपने घर लौट, परिवर्तन का स्वीकार कर लेते हैं। फिर

भी सबको पता है कि कल नूतन सूर्य अवश्य उग निकलेगा। इस तरह मनुष्य को अपार, अथाक और निरंतर पुरुषार्थ और आशा का संदेश मिलता है।

प्रिय साधको! अस्त होते हुए सूर्य में समग्र रूप से एकाग्र होने से धीरे धीरे सारी वासनाएं क्षीण होती जाती हैं। अंतर में बोध जगता है, कि पूरे ब्रह्मांड को प्रकाशित करने वाला सूरज भी ढल जाता है तो मेरा अस्तित्व तो छोटा सा है। कालांतर में साधक का वासना शून्यता और अहं शून्यता में प्रवेश होता है।

उपस्थिति के साथ साथ अनुपस्थिति का अहसास ही साक्षात्कार है। जीते जी विराट में विलीनता से बड़ी सिद्धी क्या हो सकती है? और इसके लिए सूर्यास्त से ज्यादा सहयोग कौन कर पाएगा?

साधक को ज्यादा से ज्यादा ४८ मिनट तक सूर्यास्त भाव ध्यान करना चाहिए। २४ मिनट सूर्य अस्त होने से पहले और २४ मिनट बाद में। खुली आंख से डूबते सूरज को देखते देखते आसमान के बदलते रंगों में डूबते रहो। इसके साथ-साथ उतरते हुए अंधकार को भी निर्विचार स्थिति से देखते रहो। दोनों समय के बीच में जो घटेगा वह खुली आंख की समाधि हो जाएगी। लेकिन ध्यान रहे, सूर्य अस्त होते ही उठकर भागना नहीं। अस्त के बाद उतरते अंधेरे का अहसास करो। सूर्य के साथ-साथ आपका ओढ़ा हुआ सबकुछ विदा हो जाएगा। आपकी शुद्ध चेतना साक्षीभाव से अंधकार को देखती रहेगी। आपको अहसास होगा कि दुनियादारी में वापस नहीं लौटना है। यह अहसास दूसरे दिन भी आपको इस ध्यान के लिए रवीच लाएगा। जैसे जैसे शांति और अक्रिया में प्रवेश होता जाएगा वैसे वैसे यह ध्यान जीवन का हिस्सा बनता जाएगा। धीरे-धीरे इस अवस्था में ही सही और शांत जीवन का अनुभव होगा और फिर बचेगा केवल उपस्थिति के साथ अनुपस्थिति का बोध। जिसे निर्विकल्प समाधि कहा गया है। साधक सभी गुणों से पार चला जाता है और यही क्षण निर्गुण ब्रह्मानंद का अनुभव है।

धरणा - ३

शीतल वायु प्रवेश भाव ध्यान ध्यान विधि-३

*सर्द हवा की लहरों के संग तदाकाच होकर सुन लो
अपनी आत्मा के स्वरों को*

प्रिय साधको!

कुदरत अनेक अनेक रास्तों से मनुष्य को अपने करीब बुलाती है। सभी रास्ते खुले हैं। कुछ रास्ते रोज़-ब-रोज़ आपके पास आते हैं लेकिन आपको पता नहीं है। कुदरत से करीब रहना ये सुख का अनुभव है। कुदरत से दूर जाना ये दुःख को निमंत्रण है।

आपको स्वयं के सहयोग के लिए सिर्फ इतना ही करना है कि आपका मन और मति आपके और कुदरत के बीच में अवरोधक न बनें।

मनुष्य का पदार्थ देह अग्नि, वायु, पृथ्वी, जल और आकाश से बना है। ये पाँचों परमात्मा की प्रत्यक्ष शक्तियाँ हैं। इसके लिए प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। मूर्ख से मूर्ख आदमी भी इसका प्रमाण नहीं मांगेगा क्योंकि अनुभवित सत्य को अनिवार्य रूप से स्वीकार करना ही होता है। अनुभूति के विश्व को तर्क जगत से जूठा साबित नहीं किया जा सकता। ये

पंचमहाभूत से बना हुआ शरीर कुदरत की ही देन है। वही परमात्मा का रहस्य है और जिस रहस्य को पाया नहीं जाता है वहाँ वेद भी नेति-नेति कह देते हैं।

वेदांत अत्यंत प्रमाणिक है। उपनिषदों में कल्पना और अतिशयोक्तियों को कोई स्थान नहीं है। वहाँ मन और बुद्धि का कोई व्यापार नहीं है। ऋषि का हेतु कविता रचने के लिए आयास-प्रयास भी नहीं है।

उपनिषदों की वल्लरियों को आप भले पढ़ लें परंतु उस सत्य को जानने के लिए आप अगर उत्सुक नहीं हैं, या आपके पास ऐसे अनुभव की कोई झलक नहीं है तो आप बौखला जाओगे, ऊब जाओगे अथवा उसके विपक्ष में खड़े रह जाओगे। वेद का एक अर्थ है, सत्य। एक अर्थ है, धर्म। वेदांत का अर्थ है जहाँ सत्य और धर्म का अंत आ गया। अर्थात् अब कोई सत्य या धर्म के विषय की अनुभूति बाकी नहीं बची।

वेदों का अंत अर्थात् सत्य या धर्म स्वत्म हो गया ऐसा नहीं परंतु पूरा पूरा सत्य पा लिया। अब सब कुछ सत्यरूप हो गया। पूर्ण सत्य में प्रवेश हो गया। अब पाने के लिए या करने के लिए कुछ नहीं बचा। कर्ता ने विदा ले ली। बचा तो केवल शून्य, आनंद, विशुद्ध चेतना। इसे शिवत्व कहो या ब्रह्मत्व, शून्यत्व कहो या निर्वाण, साक्षात्कार कहो या मोक्ष। कुछ भी कह लो, परंतु अब अंत आ गया। प्रयास का पूर्णविराम। न कुछ आगे, न कुछ पीछे, न कुछ मध्य में। इसलिए तो परब्रह्म को कालातीत या त्रिकालाबाधित कहा है। क्योंकि समय के टुकड़े तो मनुष्य ने किए। समय तो एक कल्पना मात्र है। कुछ बाहरी व्यवस्थाओं के लिए यह कल्पना करनी पड़ी। परंतु सत्य तो आदि अनादि, समय से पहले और समय से पार है।

पंचभूत उस ब्रह्म की माया है। उसे माया के ज़रिए भी जाना सकता है। पाया जा सकता है। अगर माया को न देखकर केवल मायावी का दर्शन और सत्संग करेंगे तो माया भ्रमित नहीं कर पाएगी। बल्कि माया समझ में आने लगेगी। माया माध्यम बन जाएगी साक्षात्कार का। बंधन मुक्ति बन सकता है, अगर बांधने वाले से संबंध स्थापित कर लो तो। बस! इस विधि में आपको इतना ही करना है।

वायु की मनुष्य जीवन में बहुत बड़ी और अनिवार्य भूमिका है। कुदरत के इस वायु तत्व से ही जड़-चेतन की चालन और संचालन क्रिया होती है। अवकाश के सहयोग से वायु शक्ति, स्पंदन और ध्वनि उत्पन्न करती है।

ध्यान रहे इस धारणा में साधक को अति एकांत स्थान में बैठने का आदेश दिया गया है। यह विधि का ही एक भाग है। विधि में जरा सी भी गड़बड़ या गलत बुद्धि प्रयोग कर देंगे तो परिणाम बदल जाएगा। मेरी बताई गई विधियों और चौपाईयों में दिए गए विवरणों के वर्णन पर कभी भी मन गढ़ंत अर्थ नहीं थोपना। आपकी नासमझी शास्त्र तो क्या सत्य को भी गलत सिद्ध कर सकती है।

घर के आंगन में गोल-गोल घूमता हुआ बच्चा कहता है कि पूरा घर घूम रहा है। पहली बार रेल में यात्रा करने वाला ट्रेन में बैठकर गाड़ी छूटते ही कहेगा कि पेड़-पौधे, खेत-खलिहान, खंभे और मकान विपरीत दिशा में दौड़ रहे हैं; यह भ्रम है, अनुभव का अभाव है। मैं कहती हूँ कि बच्चे जैसे निर्मल जरूर बनो परंतु बचपना मत करो।

इस विधि में दो बातें हैं। एक तो साधक को अति एकांत स्थान में बैठना है, दूसरा बहती हुई शुद्ध वायु के “सांय सांय” स्वर में प्रवेश करना है। अर्थात् आपको ऐसा एकांत स्थान ढूँढना है कि जहाँ शुद्ध वायु बह रही हो। अन्य विक्षेप या आवाजें ना आ रही हों। घर के कमरे को बंद करके पंखा चला कर वायु की ध्वनि उत्पन्न नहीं करनी है। यहाँ शुद्ध-वायु की बात की गई है। अर्थात् वनस्थली, बाग-बगीचे, खेत-खलिहान, नदी तट, समुद्र तट या कोई एकांत स्थान पर बने हुए आश्रम में चले जाओ। लेकिन याद रहे हरिद्वार की हर-की-पेढ़ी पर मत जाना या सन्डे को गार्डन में मत जाना। वहाँ न तो एकांत मिलेगा और न ही शुद्ध-वायु।

मुझे स्वस्थ चित्त से, मुमुक्षा से और आपके परंपरागत धर्मों की धारणाओं से मुक्त रहकर समझने की कोशिश करना। तभी तो मेरे वचन आपका सहयोग कर पाएंगे।

अति एकांत स्थान में भी हजारों हजारों छोटे-बड़े परमाणु होते हैं। पत्थर, पहाड़ी, पानी, ज़मीन, वृक्ष या रेत से टकराते हुई जो आवाज़ आती है, वे समस्वर होती हैं, एक सी होती हैं। वहाँ कोई विविध मशीनों की आवाज़ नहीं होने से उसकी लय नहीं टूटती है। वह आवाज़ मानव सर्जित नहीं परंतु कुदरत सर्जित है। उस स्वर में जब आपका स्वर तद्रूप हो जाएगा। उसे सुनते सुनते आप जब आपके बाहरी ढांचों को बिसर जाओगे अथवा आपकी भीतर की वायु बाहर की वायु के साथ तदात्म्य साध लेगी तब तुरंत ही सूक्ष्म के साथ आपका तार जुड़ जाएगा कि जिसका आपने विस्मरण कर दिया था।

सही हीरे को पहचान लेने के बाद रंग बिरंगे पत्थरों को कौन भरेगा अपनी जेब में! कुदरत के साथ समस्वरता सधते ही हो जाएगी साधना पूरी। खो जाएगा आपका बाहरी अस्तित्व, आप हो जाएंगे विराट रूप, तद्रूप, तदाकार। आप स्वयं को विदेही अनुभव करने लगेंगे। शरीर के होते हुए भी शरीर से ऊपर उठ जाएंगे।

एकांत के कारण पहले तो आपका प्रवेश होगा शांति में। वह शांति वायु की शीतलता का गहन अनुभव करने के लिए द्वार खोलेगी। शीतलता धीरे-धीरे आपको उसकी ओर खींच लेगी। उससे घनिष्टता स्थापित होते ही आपका चित्त स्पर्श शक्ति उपरांत श्रवण शक्ति से उसके संगीत को सुनने लगेगा। धीरे धीरे आपके भीतर का स्वर और बाहरी हवा का स्वर एक रूप हो जाएंगे। अंततः आप विलीन हो जाएंगे और बचेगा केवल निःशब्द स्वर ब्रह्म।

तो चलो अब खुले मैदान में, या नदी तट पर और कम से कम २४ मिनट तक हवा को आलिंगन करने दो और सुनते रहो उसकी आवाज। हवा का बीच बीच में रुकना और फिर से शुरू होना। उन दोनों क्षणों के बीच की शांति का अनुभव करो।

धरणा - ४

वरु प्रवेश भाव ध्यान ध्यान विधि-४

*हरे भरे वृक्ष के सानिध्य में
फलित होगी स्थितप्रज्ञावस्था*

प्रिय साधको!

मैं बार बार कहती हूँ कि समग्र ब्रह्मांड के साथ हम कहीं न कहीं किसी न किसी रूप से जुड़े हुए हैं। आप अगर मेरी इस बात का स्मरण रखेंगे तो यह बात आपके आंतरिक विकास में बहुत मदद कर सकती है। आप उदारता, एकरूपता, स्वीकारभाव और समभाव से भर जाएंगे। द्वैतभाव से पार जाने के लिए अथाक प्रयत्न के बाद भी अच्छे-अच्छों को सफलता नहीं मिलती, परंतु आपके लिए यह सहज बन जाएगा, केवल एक छोटे से गुर (रहस्य) का स्मरण रखने से।

आपका मन जितना कुदरत के साथ जुड़ा रहेगा उतना अमन होता जाएगा। जितना प्रकृति से दूर होता जाएगा उतना दूषित होकर दोषदृष्टा या दोषपूर्ण होता जाएगा। प्रकृति से दूर जाने वाला, अप्राकृतिक वर्तन करने लगता है। मैं कहती हूँ कि प्रकृति से अर्थात् कुदरत से दूर जाना या विमुख होना ये परमात्मा से दूर जाना है।

मेरी दृष्टि से परमात्मा से निकटता है, धर्म; और दूरी है अधर्म।

प्रकृति के करीब करीब सभी तत्व ध्यान में उतरने के लिए अपने आपमें पर्याप्त हैं। हमारे मनीषियों ने और ध्यानियों ने

प्रकृति पर इसीलिए ही ज्यादा जोर दिया है। इसी वजह से साधु-संत जंगल में जाकर बसते थे ताकि अप्राकृतिक वातावरण में से पुनः प्रकृति के साथ जुड़ जाए और सहजता से ध्यान में प्रवेश हो जाए।

आज सीमेन्ट के जंगलों में कुदरती तत्व ढँक रहे हैं, छूट रहे हैं। प्रकृति और मनुष्य के बीच में मानव सर्जित फासला हो गया है। प्रकृति कभी फासले खड़े नहीं करती, वह तो हमेशा निकट रहती है। फासले बनाए मानव ने और मानव ही उसका शिकार बन गया। इसीलिए तो विश्व के पूरे इतिहास में आज तक ध्यान पर जितना ज़ोर नहीं दिया गया उतना अंतिम सौ वर्ष में देना पड़ा है। जो बात सहज होती है उस पर ज़ोर देने की आवश्यकता नहीं होती परंतु मनुष्य जब सहजता से और कुदरत से दूर रहता है तो आज नहीं तो कल उसे फिर से सहजता की ओर लौटना ही पड़ता है। इसीलिए तो पश्चिम के करीब करीब सभी देश भारत के अध्यात्म चिन्तन की ओर मुड़ रहे हैं। ध्यान मूल स्रोत की ओर वापस मुड़ने का एकमात्र उपाय है। यह उसकी समझ में आ रहा है।

भारत के लोग भी कुछ साल से योग-ध्यान के पीछे पड़े हैं। योग के लिए पागल हैं ऐसा कह सकते हैं। लेकिन किसी भी प्रकार का अंधापन या पागलपन घातक है। योग या ध्यान के पीछे नहीं पड़ना है। उसे समर्पित होना है। ये डिब्बे में ले लेने की चीज़ नहीं है; ये तो हर प्रकार के मालिकीभाव से मुक्त होने की कुंजी है। क्षणिक पागलपन काम का नहीं है। जागृतिपूर्ण समर्पण और सजग एवं समग्रता पूर्व प्रयास सहयोग कर सकता है। ये आपको कुछ भी नहीं देगा, बल्कि जो कुछ भी “आपका है” ऐसा मान लिया गया है उस मान्यता को तोड़कर आपको अकिंचन और दुनियादारी से उदासीन बना देगा। अकिंचनावस्था में भी आनंदित रहकर हरपल उत्सव मनाने की कला सिखा देगा।

हमारे ऋषि-मुनि-ध्यानी वास्तव में अकिंचन ही थे – खुले आकाश के तले वृक्ष के नीचे निरावृत्त बैठे हुए शिव या महावीर या बुद्ध को कभी देखे है? उनका भिक्षुपन ही उनकी परम स्वतंत्रता है। सबकी अमीरी उनकी गरीबी के चरण छूती है। ऐसी मौज, ऐसा आनंद प्रकृति की शरण में आने वाला ही ले सकता है। महलों में रहेने वाले सम्राट तो सबसे बड़े गुलाम होते हैं।

खैर! मुझे ध्यान विधि समझानी है परंतु ये सारी बातें विधि के साथ साथ समझाना बहुत जरूरी है। किसी भी विषय की महिमा की समझ ही आपको उस विषय को आत्मसात करनेवाली तड़प जगाती है। आपको ध्यान के प्रति तड़प लगे, प्यास लगे, इतना ही मेरे लिए काफी है। फिर तो सब अपने आप हो जाएगा। मेरा काम है आपमें सच्ची प्यास जगाना, केवल कुतुहल नहीं, चमत्कार की कोई बातें नहीं, कोई लालच नहीं, कोई स्वार्थ नहीं, केवल परमार्थ। मनुष्य की सही समझ ही उसे सही धर्म के लिए प्रेरित करती है। मेरा काम केवल आपकी समझ जगाना है।

मैं आपको प्रकृति आधारित ध्यान विधियों में से तरु प्रवेश भाव – धारणा समझा रही हूँ। इस विधि के लिए कोई घना सायादार वृक्ष मिल जाए तो बहुत अच्छा। अगर ऐसा नहीं हुआ तो आपके छोटे से घर के छोटे से आंगन में छोटी सी बगिया में नूतन पर्णों से लदी हुई कोई बेलि का झुंड या पुष्प के पौधे के समुदाय को भी आप माध्यम बना सकते हैं।

याद रहे! केवल वृक्ष ही हराभरा नहीं, आप भी हरेभरे हैं। वृक्ष की भांति आपमें भी हरापन है। उस हरेपन की वजह से तो आप घूमते-फिरते, नाचते-गाते, उछलते-कूदते हो। जब जब आप प्रसन्न होते हैं और किसी भी विषय वस्तु से खुश होते हैं तब समझना कि ये खुशी विषय या वस्तु की बदौलत नहीं परंतु आपके भीतर के हरेपन की वजह से है। विषय, वस्तु, व्यक्ति या वातावरण तो केवल माध्यम का काम करेगा। हरापन तो भीतर है ही – माध्यम ने उसे उभरने में मदद कर दी। वह हरापन ही परमात्मा है।

मनुष्य में इतनी स्वाभाविक समझ होती तो मुझे इतना बोलना नहीं पड़ता, ना कोई पुस्तक लिखनी पड़ती परंतु मनुष्य

स्वाभाविकता से दूर हट गया है। मैं उसको उसकी स्वाभाविकता में पुनः प्रतिष्ठित करना चाहती हूँ। यही मेरे लिए सच्ची प्राणप्रतिष्ठा है। मूर्तियों के प्राणप्रतिष्ठा महोत्सव बहुत होते हैं परंतु मनुष्य को स्वयं की सहजता में पुनः प्रतिष्ठित करना मेरे लिए सबसे ज्यादा महत्वपूर्ण कार्य है।

ध्यान को निमित्त बनाकर, आओ वृक्ष के करीब, बेलियों के करीब, पौधों के करीब, हरेभरे पत्तों के करीब, छोटी-छोटी कोपलों के करीब। देखो उसकी सरसता, उसकी कोशिकाओं में रस बहता है। रस की वजह से वे हरे हैं, कोपलें खुलकर पर्ण का रूप ले रहीं हैं। आपकी कोशिकाओं में भी रस बह रहा है, यही – आपके नाचने, झूमने, प्रसन्न रहने, गुनगुनाने, हरेभरे और आनंदित दिखने का राज है। इस रस को भाषा शास्त्र के विद्वानों ने ब्रह्म कहा है – निरसता मृत्यु है और रस जीवन है।

रस के बहुत सारे अर्थ हैं। संस्कृत का रस शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण है – उसके प्रत्येक अर्थ हकारात्मकता और गुण से भरे हैं। रसिकता से ही सृष्टि के अस्तित्व को आत्मसात किया जा सकता है। रसिकता के अनुभवी ही वृत्तियों का निरसन कर सकते हैं। ऐसा नहीं कि वह निरस होकर वृत्तियों को मार देता है; परंतु अध्यात्मिक समझ से वह संसार रस को परमात्मा के रस में रूपांतरित कर देता है। उसे बोध हो जाता है कि मुझमें परमात्मा ने इतना रस, ऊर्जा, चेतना, क्षमता, जीवंतता भरी है तो पूरे ब्रह्मांड में कितनी भरी होगी! यह एक विचार मात्र अस्तिकता के लिए पर्याप्त है। इस विचार के बाद न कोई पूजा-पाठ की आवश्यकता है, न ही नास्तिकता का कोई स्थान रहता है। यह विचार आस्तिकता और नास्तिकता के परे का है। यह तो सर्वमान्य सत्य है। कोई स्वीकार करे या न करे। सत्य तो सत्य ही रहेता है।

दुनिया में ऐसा मनुष्य ढूंढना असंभव है कि जिसकी कहीं न कहीं आस्था न जुड़ी हो। मेरी दृष्टि से कहीं भी जिसकी आस्था है वह आस्तिक। फिर जरूरी नहीं कि वह भगवान में या मंदिर-मस्जिद में हो। दृश्य में या अदृश्य में कहीं न कहीं तो मनुष्य आस्था से जुड़ा ही है। फिर पैसे में आस्था रखता हो या परमात्मा में, वह आस्तिक तो है ही। केन्द्र में आस्था है, विषय नहीं।

नास्तिकता एक अहंकार है, कोरी कल्पना है, मिथ्या है और नकारमात्र है। आस्तिकता परम सत्य है। अगर आस्था है तो उसका विषय बदल भी सकता है। आस्था ही जीवन का आधार है, फिर वह स्वयं में हो या परमात्मा में; ये बात गौण है।

ध्यान मनुष्य को स्वयं के साथ साथ समग्र ब्रह्मांड के प्रति आस्था से भर देता है। हकारात्मक ऊर्जा विकसित होती है और वामन में विराट का अनुभव होने लगता है। यही साक्षात्कार के क्षण हैं।

तरु प्रवेश भाव ध्यान में जब साधक वृक्ष या बेलि के पर्ण झुंड में प्रवेश करते करते अस्तित्व की अनुग्रहशीलता का अनुभव करने लगता है। तब विराट की असीम करुणा और रहस्य का साक्षात्कार करके प्रकृति के साथ एकरूप होता जाता है। यह समझ और अवस्था बुद्धिजगत या विचारजगत से निष्पन्न नहीं होती है। सीधे अनुभव के ज़रिए सत्य का स्वीकार होता है। वृक्ष और पत्तों की सरसता और हरेपन में खोकर साधक सरसता में से सरसता का अनुभव करने लगता है। ये समरसता ही जीव और शिव का मिलाप है, मुक्ति का क्षण है या परम समाधि है। विज्ञान भैरव तंत्र इसे भैरवावस्था कहता है। बुद्ध इसे समापत्ति कहते हैं और वेदांत ब्रह्मतत्त्व या शिवतत्त्व भाव कहते हैं। एक ही अनुभव भिन्न भिन्न भाषाओं में वर्णित हुआ है।

प्रिय साधको!

कुदरत को माध्यम बनाकर साध लो उससे तनम्यता, घुल जाओ विराट के साथ; क्यों बने रहतो हो वामन! केवल साधना में प्रमाद के कारण निरस, उदास, दुःखी, दरिद्र बने रहना तो मूढता है। इस व्यवसायिक बुद्धि को बीच में लाना आध्यात्मिक अपराध है। मत करो ऐसा अपराध। स-रस बनो, स-रसता से देखना सीखो, स-रस को सराहो, स-रसता

की उपासना करो, स-रसता बाँटो; इन सबको ध्यान बनाकर समरसता में प्रवेश कर लो, इसके लिए केवल पेड़-पौधे और बेलि-पत्ते भी आपके गुरु बन सकते हैं।

धरणा - ५

पुष्प प्रवेश भाव ध्यान

प्रिय साधको!

बाहर का सौंदर्य भीतरी सौंदर्य का बोध कराने में सहायता दे सकता है। लेकिन बाहर का सौंदर्य सहज स्वाभाविक और कुदरती होना चाहिए, बेपर्दा होना चाहिए। आखिर मुखौटा तो मुखौटा है। वह चालाकी का हो या मेकप का। हर मुखौटा आपकी सहजता को नष्ट कर देता है। यह आपके और सत्य के बीच में बाधा बन जाता है। मैं आपसे कहती हूँ कि सहज, स्वाभाविक सौंदर्य का दर्शन करना कभी मत चूको। साथ-साथ यह भी याद रहे कि दृश्य के साथ दर्शन भी स्वाभाविक होना चाहिए। उस दर्शन को मन या मति, वासना या लालच की इच्छा से मत करना। मैं आपको, अन्य चेतना के सौंदर्य को, अपने विशुद्ध रूप में देखने की कला सिखा रही हूँ। याद रहे! केवल विशुद्ध भावावस्था में ही विशुद्ध दर्शन प्राप्त होते हैं। कुछ व्यक्ति अपने सहज सौंदर्य के लिए अबोध रहकर अधिक सुंदर दिखने के इरादे से कुदरती सौंदर्य को ढांक देते हैं। मैं कहती हूँ मनुष्य की सहजता में, सरलता में, प्रसन्नता में और निर्मलता में उसका सच्चा सौंदर्य निखर आता है। अगर रंग-रोगान में ही सौंदर्य है तो इमारतें प्रेम करने लगतीं, परंतु ऐसा नहीं है। निखालस, निर्दंभी और प्रसन्न चित्तवाला बदसूरत आदमी भी सुंदर दिखता है और कपटी, चालाक या दूषित मन वाला सुंदर चेहरा भी अपनी भीतरी बदसूरती नहीं छिपा सकता।

आप उपवन में देखना, हर रंग के फूल सुंदर दिखते हैं। कुदरत में काले, पीले, गोरे का कोई भेद नहीं है। कुदरत के नियम में सहजता ही भगवतता है – पुष्प गीता या रामायण का पाठ करते हैं इसलिए सुंदर नहीं हैं। वे सहज हैं इसलिए भगवान के सिर पर चढ़ाने योग्य हैं। सहजता-पावनता और स्वाभाविकता को परमात्मा अपना सिंगार बना लेते हैं। मैं आपको कहती हूँ भगवान बनने का शौक मत रखो। कुछ लोग भगवान बनने की कोशिश करते हैं। मैं कहती हूँ कि आप भगवान का ही एक स्वरूप हैं परंतु ऐसे बनो कि वह भगवान और निखर उठे, ज्यादा जीवंत बन जाएं और सुंदर दिखें, सहजता और निर्दोषता से सजालो अपने भगवान को। आप सचमुच दर्शनीय हो जाएंगे। सजे हुए भगवान के दर्शन के लिए ज्यादा लोग जाते हैं – ये सौंदर्य की महिमा है।

रज से अच्छादित, गंदी, मैली मूर्ति देखना भी अच्छा नहीं लगता है, तो आपने कभी सोचा है कि गंदे आवरणों से ढंका हुआ मनुष्य कितना बदसूरत लगता होगा! जिसके पास विशुद्ध दृष्टि है उसे तुरंत पता चल जाता है आपके ऊपर जमी हुई गंदगी का।

प्यारे साधको! पुष्प न कभी छल-कपट से अपने को भरते हैं, ना बनावटी हास्य या प्रेम का नकाब चढ़ाते हैं। न कभी होठों पे लाली लगाते हैं, न ही आंखों में कजरा। उनकी सादगी ही उनके लिए सिंगार बन जाती है। मेरे सत्संग से प्रेरित होकर पुष्प दर्शन के द्वारा आपने अगर इतना सीख लिया तो आधी साधना तो हो गई। अब बाकी रहा प्रकृति के साथ तन्मय

होना।

सुंदर होना और सुंदर दिखना, इन दोनों बातों में बहुत फर्क है। संत तुलसी ने कहा है,

”मन मलीन तनु सुंदर कैसे ?

विषरस भरा करक घट जैसे”

मन का मलीन परंतु ऊपर से सुंदर दिखाई देने वाला मनुष्य जहर से भरे स्वर्णकलश के समान है। केवल हृदय की शुद्धता में ही परमात्मा का निवास है। चमड़ी का सौंदर्य तो ऊपर ऊपर का है। लेकिन ज्यादातर लोगों का रस ऊपर ऊपर का ही है। किसे होश है यहाँ आर पार देखने का ? जिसका मन हो जाता है शुद्ध आयने की तरह, ऐसा साधक सब कुछ जैसा है वैसा ही देख सकता है।

प्रिय साधको ! यहाँ जो विधि मैं बताने जा रही हूँ, इस विधि के लिए कुछ बात समझना अत्यंत आवश्यक है। इसलिए ये बातें कहनी पड़ती है। इसे समझे बिना दृश्य और दृष्टा में एकता स्थापित कैसे कर पाएंगे ? कुदरत का दर्शन करने की दृष्टि कहाँ से लाएंगे ? पत्थर का दर्शन कर-कर के दृष्टि इतनी स्थूल हो गई है कि पुष्प की कोमलता और करिश्में में उतरने की क्षमता मनुष्य खो बैठा है। घड़ी के टकोरे पर आरती, अभिषेक और प्रसाद के लिए भागने वाले मनुष्य में पुष्प के पास घंटों तक बैठने का धैर्य कहाँ ? – इसलिए विधि को बताने के पहले मानव मन को विधि के लिए तैयार और प्रशिक्षित करना मेरे लिए अनिवार्य हो गया। मानव सर्जित मंदिरों में भी मनुष्य ने अपनी सुविधा के अनुसार दर्शन के कानून बनाए रखे हैं। और बेबूझ मनुष्य ने उसे ही धर्म मान लिया है। परंतु परमात्मा कुदरत के रूप में आपको २४ घंटे पुकार रहे हैं। कुदरत ने अपने अनेकों अनेक मंदिर आठों प्रहर खोल रखे हैं। जहाँ से भी चाहो वहाँ से पहुँच जाओ परमात्मा के पास। वहाँ सिर्फ एक ही नियम है एकरूपता का, तन्मयता का, तद्रूपता का, अद्वैतता का। और मंदिर हैं झरने, नदियाँ, वन, पर्वत, आकाश, पुष्प, पतंगे.....।

मनुष्य विधियों में से गुजर लेता है – परंतु पात्रता के अभाव में विधियाँ परिणाम शून्य हो जाती हैं अथवा योग्य रूप से घटित नहीं होतीं। इसलिए ये सब कुछ समझाना पड़ता है। भूमि तैयार होने से बीज तुरंत उग निकलेगा अन्यथा व्यर्थ जाएगा।

प्रिय साधको ! अगर संभव है तो प्रातःकाल मे ही उपवन या बगीचे या जहाँ खिलते पुष्प समूह उपस्थित हो वहाँ पहुँच जाओ। श्वास को शांत होने दो। बैठ जाओ पुष्प के निकट। उघड़ती कलियों को देखते जाओ, देखते जाओ। उस देखने में आपके चित्त को इतना एकाग्र होने दो कि और सारे विचार खो जाएं। धीरे धीरे आपको महसूस होगा कि परमात्मा एक साथ बहुत सारे रूपों से आपको घेर रहे हैं। क्योंकि कलियाँ फूल तो बन गईं परंतु कैसे बनी ये आप पकड़ नहीं पाओगे और आपके सामने ही आए हुए बदलाव को लगातार ध्यान रखने पर भी नहीं पकड़ पाने की वजह से आपका मन आश्चर्य से भर जाएगा, परमात्मा के चमत्कार या रहस्य के लिए। दूसरी ओर उसके रंग आपको प्रभावित करेंगे। तीसरी ओर उसकी सुवास आपको घेर लेगी। चौथी ओर उसकी कोमलता आपको छू लेगी। पांचवी ओर उसका सौंदर्य आपको मोह लेगा।

आप एक साथ अनेक प्रकार की सुंदरता से मंत्रमुग्ध हो जाएंगे और यही क्षण है आपके अहं को नष्ट करने का। क्योंकि आपके सामने एक बार सब कुछ घट गया परंतु आप कुछ भी नहीं पकड़ पाए। आप कितने विवश, लाचार और कमजोर साबित हो गए एक छोटे से पुष्प के सामने। आपका सारा अहंकार सहजता से पिघल जाएगा। बुद्धि कुंठित हो जाएगी। उसके सारे व्यापार बंद हो जाएंगे, वह हार जाएगी एक छोटे से पुष्प के सामने क्योंकि वह कुछ समझ नहीं पाई कि ये सब कैसे घटा ! वह फिदा हो जाएगी, मन समर्पित हो जाएगा कुदरत के करिश्मे के सामने। मन, बुद्धि और अहंकार खो जाता है, तो फिर शरीर या इन्द्रियाँ बन जाएंगी माध्यम परमात्मा को पाने का। उसके रंगों में, सुगंध में, सौंदर्य में, वे खोने लगेंगे। धीरे-धीरे देह भान भी अदृश्य हो जाएगा। आप केवल आँखों और नासिका के जरिए परमात्मा के विविध रंग और सुवास – स्वरूप का

अनुभव करेंगे। आप स्पर्शान्द्रिय द्वारा उसकी शीतलता को छू लेंगे। धीरे धीरे वह सौंदर्य, सुवास, रस और रंग आपके स्वरूप के इन समान गुणों के साथ एकरूप हो जाएंगे। फिर आप और पुष्प भिन्न नहीं रहेंगे। आप सिर्फ एकरूपता की स्थिति के दृष्टा बने रह जाएंगे। यही है मुक्ति का क्षण, यही है ध्यान की चरम सीमा, यही है ज्ञानावस्था, यही है आशीर्वाद बरसाने के क्षण, यही है भगवतता का सच्चा अवतरण, संकल्प विकल्प से पर की अवस्था, यह केवल चित्त की अविचलता में ही प्राप्त होता है।

मैं कहती हूँ कि मेरी बताई हुई इस विधि को आप आपका अनुभव बना दें।

धरणा - ६

क्षितिज प्रवेश भाव ध्यान

प्रिय साधको!

क्षितिज जैसा कुछ है ही नहीं, लोग धरती और आसमान के मिलन बिंदु को क्षितिज नाम से जानते हैं। लेकिन ये मनुष्य की आंख का भ्रम है। मनुष्य की आंख की दूर देखने की क्षमता सीमित है। जहाँ उसके देखने की क्षमता पूरी हो जाती है वहाँ उसे लगता है कि ज़मीन और आसमान मिल रहे हैं परंतु ये सत्य नहीं है, आंखों का भ्रम है। परंतु यह भ्रम भी बहुत प्यारा है। अगर तुम उसका उपयोग करना जान लो, तो वह ध्यान का विषय बन सकता है।

क्षितिज एक कल्पना है। इस कल्पना से मनुष्य ऐसा मान लेता है कि कहीं दूर आसमान और धरती मिल रहे हैं। परंतु ये कल्पना भी सुंदर है। आंख के सामने खड़े होते हुए दृश्य में भी कुदरती सौंदर्य है। अगर हकीकत से ज्यादा कोई कल्पना आपकी मदद कर सकती है तो ध्यान शास्त्र कहता है कि कल्पना को इस्तेमाल कर लो और निर्विचार हो जाओ। उद्देश्य कल्पना नहीं है, कल्पना केवल माध्यम है। माध्यम तो कोई भी बन सकता है। आधार कोई भी नहीं बन सकता; मात्र स्वचेतना ही आधार है।

वैसे तो भूत और भगवान दोनों मनुष्य की कल्पना ही हैं, क्योंकि वे इन्द्रियातीत हैं। परंतु दोनों का असर मानवमन पर जबरदस्त है। लोग पत्थर में भगवान का भाव करके भवसागर पार उतर जाते हैं। मीरा भक्ति के भावावेश की अवस्था में ज़हर तक पी गई और उसे कुछ भी नहीं हुआ। भाव के प्रभाव में अर्थात् किसी भी प्रबल धारणा के प्रभाव से मनुष्य के रसायण बदल जाते हैं।

खेत में किसान को भले कोई साधारण जंतु ने काट लिया हो परंतु कोई उसे कहेगा कि सांप ने तुझे काट। यह मैंने देखा है – खलास! किसान बेहोश हो जाएगा। और कभी कभी खुद को अंत तक पता नहीं चला कि सांप ने काटा है, तो थोड़ी बहुत खुजली करके घाव को सहेलाकर छोटी मोटी पट्टी या वनस्पति बांधकर कुछ घंटों में भूल जाएगा और बरसों तक जिएगा।

मन मनुष्य का आधा सूक्ष्म शरीर है और स्थूल देह मन का अर्ध स्थूल स्वरूप है। हमारे ग्रंथों में से मनोविज्ञान को निकाल दिया जाय तो अन्य ग्रंथ करीब करीब निरर्थक हो जाएंगे। क्योंकि विश्व के अधिकतर मनुष्य मन पर खड़े हैं। लाखों में से एकाध मनुष्य मन के पार जा सकता है।

भारत के गुजरात राज्य के सौराष्ट्र प्रांत में सारंगपुर हनुमान नाम का एक स्थान है – जहाँ बरसों पहले एक साधु ने लोगों को धारणा दे दी कि किसी भी भूत प्रेत से पीड़ित मनुष्य को यहाँ हनुमान जी के सामने दर्शन के लिए लाया जाएगा तो

वह भूत प्रेत के बंधन से मुक्त हो जाएगा। मैंने मेरी नज़रों के सामने देखा है कि जहाँ डॉक्टर असफल हुए हैं वहाँ हनुमानजी काम कर गए हैं। यहाँ आस्था – अनास्था का प्रश्न नहीं है। यहाँ मनोविज्ञान का असर है। प्रबल धारणा का ये प्रभाव है। मनोचिकित्सक भी इन रिवाजों से दंग रह जाते हैं। वडोदरा के एक अस्पताल में रीशेषान पर सारींगपुर हनुमान की फोटो लगा रखी है। यह भी एक प्रकार की पेशेंट को मानसिक ट्रीटमेंट देने की रीत ही है। धारणा और विज्ञान जुड़कर अगर अच्छा परिणाम ला सकते हैं तो लाने दो।

मनुष्य के हित में अगर कल्पना मदद कर सकती है तो करने दो। वडोदरा के मेरे निकट वर्तुल में से एक रावपुरा के गोयनेकोलोजिस्ट डॉ. पाठक मुझे कई बार कहते हैं, “कि कुछ-कुछ बातें हम भी भगवान पर छोड़ देते हैं। ये अस्तित्व के प्रति समर्पण है।” आप जब अस्तित्व को समर्पित हो जाते हो तब पूरा अस्तित्व आपकी मदद करने लगता है। सूक्ष्म आशीर्वाद बरसने लगते हैं।

संक्षेप में मैं इतना ही कहना चाहूँगी कि जो कल्पना ये धारणा मनुष्य के लिए कल्याणकारी हो तो उसका उपयोग भले करो। लेकिन वह अंधश्रद्धा नहीं बन जानी चाहिए। धारणा के आधार से स्वस्थ होकर फिर स्वस्थता बनाए रखो, फिर धारणा को छोड़ दो। एलार्म बज गया, आप जाग गए, अब छोड़ दो घड़ी को। बंद करो एलार्म को। एलार्म चौबीस घंटे बजता रहे और आप जागो ही नहीं, ये तो मूढ़ता है।

प्रिय साधको! क्षितिज वास्तविक नहीं परंतु सुंदर और बोधप्रद जरूर है। क्षितिज बिंदु पर हेतु सह लगातार देखने से निर्विचार अवस्था प्राप्त हो जाती है। इतना ही नहीं परंतु क्षितिज का दृश्य आसमान और ज़मीन को मानो एक कर देता है। यह स्थूलता और सूक्ष्मता के मिलाप का बोध कराता है। पार्थिवता और विराटता के मिलने का बोध कराता है। वह भारी का हल्के में अदृश्य होने का बोध कराता है। जैसे कहीं दूर-दूर धरती मिल जाती है आसमान से। वैसे ही साधक को क्षितिज सीमा को बहुत समय तक देखते-देखते कहीं दूर जाकर, निर्विचार होकर आध्यात्मिक यात्रा में आगे बढ़कर खुद की स्थूलता भी विराट में विलीन हो रही है, ऐसा प्रतीत होता है। यह भाव उसे पार्थिव आकर्षणों से मुक्त कर सकता है और सूक्ष्म के प्रति स्वीचता रहता है।

अथवा साधक को जब लगता है कि क्षितिज बिंदु में आसमान धरती को छू रहा है तब लंबे समय तक उस बिंदु में एकाग्र होने से धीरे धीरे संकल्प-विकल्प से परे की अवस्था सहज ही उतरती है और फिर यह अवस्था कायम बनी रहे ऐसा आकर्षण उठता है क्योंकि वही एक अवस्था परम शांति या शिवत्व की है। इस ध्यान के अभ्यास से आसमान जैसे विराट, उदार और शांत परमात्मा आपमें भी उतर रहे हैं, ऐसी अनुभूति होने लगती है। यह निर्विचार स्थिति का ही परिणाम है। परंतु आवश्यकता है पहले निर्विचार होने की। और यह अवस्था क्षितिज बिंदु में ध्यान करने से आ जाती है।

प्रिय साधको!

याद रहे, आपका साध्य क्षितिज नहीं है, साध्य है निर्विकल्प अवस्था। क्षितिज तो केवल साधन है। जरूरी नहीं कि साधन भी सत्य हो। वैसे तो आसमान तक उड़ने वाले विमान को भी समंदर पार करने के बाद हम छोड़ देते हैं। ध्येय को देखो माध्यम को नहीं।

क्षितिज भले भ्रम मात्र है परंतु शांति की रसायनों को बढ़ाने में शरीर की ग्रंथियों को मदद करता है। न्याय शास्त्र ने इस बात को समझाने का बहुत अच्छा प्रयास किया है। मैंने जो बात की उस बात का प्रमाण “रज्जू-सर्प न्याय” नाम से न्यायशास्त्र में मिलता है। भ्रम की वजह से मनुष्य सर्प को डोरी मानकर पकड़ लेता है। ऐसी स्थिति में पकड़ने के पहले भ्रम की वजह से वह निर्भय होता है और पकड़ने के बाद स्पर्श ज्ञान से स्पर्शेन्द्रिय संदेशा देती हैं मस्तिष्क को कि गड़बड़ हो गई!

दिमाग को पता चलते ही रसायण बदलने लगे और हृदय ज़ोर-ज़ोर से धड़कने लगा, शरीर कांपने लगा। दूसरी स्थिति में, रस्सी को देखकर भ्रम की वजह से किसीके मन ने धारणा बना ली कि वह तो सांप है, डर के मारे सांप से बचने के लिए हाथ में लाठी उठा ली, थोड़ी दूर चला गया, चिल्लाकर घर के दूसरे व्यक्तिको या पड़ोसी को बुला लिया, लाईट जलाई – तब तक डर था, लाठी से टटोलने के बाद पता चला कि यह तो रस्सी है – सबकुछ नोर्मल हो गया। हृदय शांत हो गया। भय के रसायण संतुलित हो गए। खुद पर हँसी आई, फिर भी आश्वासन ले लिया कि कोई बात नहीं देख लिया वह ठीक किया! शायद सांप होता तो ?

प्रिय साधको !

शायद अब आप समझ पाओगे कि कल्पना जगत मनुष्य मन के रसायनों के साथ कैसे काम करता है ?

धारणा एक तीव्र या दिव्य कल्पना ही है। जो मनुष्य के मन की प्रमुख पांच वृत्तियों में से एक है। मन के निरर्थक संकल्प विकल्प को कल्पना कह सकते हैं और ध्यान के लिए मन के द्वारा किए जाने वाली तीव्र कल्पना को धारणा कहते हैं। पतंजली मन की हकारात्मक और नकारात्मक दोनों मिलाकर पांच प्रकार की वृत्तियों का वर्णन करते हैं। इनमें से एक है “विकल्प” वृत्ति – यहाँ विकल्प का अर्थ विशेष कल्पना है – क्षितिज मनुष्य मन की एक विशेष कल्पना है, परंतु बहुत प्यारी और सहयोग करने वाली है।

क्षितिज में धरती की पार्थिवता और आकाश की दिव्यता एक हो जाती दिखाई देती है। उसमें प्रवेश करते-करते साधक के रसायण उस हद तक बदल जाते हैं कि उसकी पार्थिवता और दिव्यता एक होना महसूस करने लगते हैं। वह बदल गया। यह बदलाव वास्तविकता होता है। यह हकारात्मक रसायनों का असर है। दो महातत्वों के एकत्र होने के आभास का परिणाम है। विराट का दर्शन विराट बना देता है। धरती और आसमान के मिलन का बिंदु उच्चतम और निम्नतम मिलन का बोध जगाने लगता है। ये ही है जीव और शिव के मिलन का पल।

समयांतर पर यह ध्यानावस्था आपकी पार्थिवता को दिव्य के साथ तदाकार करती जाएगी, स्थूलता को सूक्ष्मता के साथ, बंधेपन को खुलेपन के साथ और निम्न को श्रेष्ठ के साथ।

अवकाश मुक्ति देता है, स्वतंत्रता देता है, उड़ने की जगह देता है इसीलिए तो हमारी परंपरा में परमात्मा की कल्पना आकाश में की है। यह सारे गुण भगवतता के हैं – विशालता, विराटता, उदारता, प्रकाशितता, अपारता, स्पष्टता, शीतलता, महाशांति ये सब परमात्मा के गुण हैं।

क्षितिज के माध्यम से मिल जाओ उस विराट में – आपके जड़त्व को आकाश सा प्रकाश और विराटता भले आलिंगन दे दे। मिल जाओ परिचित अपरिचित में जो सदा आपके साथ होते हुए भी विस्मृत हो गया है। इस ध्यान में धीरे धीरे बाहरी क्षितिज गौण हो जाएगा और आपकी चेतना बंधन की सारी सीमाओं को लाँघकर विराट में विलीन हो जाएगी। यही आशीर्वाद, आनंद, भैरवावस्था या विदेहावस्था है। बैठो रहो कम से कम ७२ मिनट तक, होने दो रूपांतरण।

धारणा - ७

बिन्दु सिन्धु प्रवेश दर्शन ध्यान

प्यारे साधको !

इस ब्रह्मांड में कुछ भी कभी भी नष्ट नहीं होता, केवल रूपांतरित होता है। परमात्मा महाऊर्जा है और पदार्थ आंशिक

ऊर्जा है। पदार्थ के नष्ट होने से पदार्थ की ऊर्जा सूक्ष्म रूप से अदृश्य हो कर वैश्विक ऊर्जा में विलीन हो जाती है अथवा पदार्थ के रूपांतरित होने से ऊर्जा भी रूपांतरित होती है। जैसे कि सूर्य, पृथ्वी, खाद, जल और बीज की ऊर्जा के समन्वय से अन्न बना, अन्न और अग्नि की ऊर्जा से भोजन बना, दैहिक ऊर्जा के संग से वह रस, रक्त, अस्थि, मांस, मेद, मज्जा और वीर्य बना। उन सबकी ऊर्जा से देह रूपी साधन कार्यान्वित हुआ, दैहिक ऊर्जा से अनेकानेक नई रचनाएं एवं विशेष उर्जाएं उत्पन्न हुईं। कालान्तर में देह नष्ट हुआ। दैहिक पदार्थ अर्थात् पंचमहाभूत और उनकी ऊर्जा पृथक्-पृथक् होकर अपने-अपने तत्वों में मिल गए। इस तरह से यह ऊर्जा चक्र चलता ही रहता है। उसके स्वरूप भिन्न-भिन्न हैं परंतु मूलस्रोत तो एक ही है। उसे कुदरत कहो, परमात्मा कहो, उसकी लीला कहो या प्रकृति का रहस्य कहो।

वेदांत भी वहाँ “नेति” “नेति” कह देता है। उपनिषद् भी प्रश्न उठाते हैं कि पूरे विश्व का जो सूत्रधार है उसका सूत्र कौन है?

प्यारे साधको!

यह न तो उत्तर का विषय है, न ही प्रश्न का, न तर्क का है, न शब्द का; यह केवल अनुभूति का विषय है। अपनी-अपनी अनुभूति के अनुसार अनुभवसिद्ध प्रबुद्धात्माएं अलग-अलग भाषा, बोली, मत या प्रतिकों के माध्यम से उसकी ओर इशारा करते हैं।

परंतु यह अनुभूति होगी कैसे? मैं कहती हूँ कि ध्यान इस रहस्य को पाने का श्रेष्ठ, सरल और वैज्ञानिक मार्ग है। इसलिए शिव से लेकर पतंजलि और कृष्ण से लेकर बुद्ध तक ने ध्यान और योग मार्ग पर जोर दिया है। क्योंकि उन्होंने जान लिया था कि ध्यान में मनुष्य के बहुत सारे प्रश्नों का समाधान है। पतंजलि भी अंतरशुद्धि और बहिर्शुद्धि के लिए यम, नियम, आसन, प्राणायाम और प्रत्याहार आदि सोपान बताने के बाद भी अंत में धारणा और ध्यान के सोपान ही देते हैं।

केवल भारत या हिन्दू ही नहीं परंतु इस्लाम, यहूदी, बौद्ध आदि धर्मों के सजग सूत्रधारों ने ध्यान पर जोर दिया है। क्योंकि उन लोगों को पता था कि केवल ध्यान के द्वारा ही व्यक्तिगत चेतना समष्टिगत चेतना का अनुभव कर सकती है। ध्यान इस अनुभव के लिए माहोल तैयार करता है।

ध्यान की अधिकतर विधियाँ वामन को विराट का साक्षात्कार कराती हैं। साधक का हृदय अहोभाव से भर जाता है—ध्यान के द्वारा अपनी विश्वरूपता का अनुभव करके वह रूपांतरित हो जाता है।

बिंदु सिंधु प्रवेश भाव ध्यान भी एक ऐसी ही विधि है – इस विधि में साधक को वर्षा काल में आसमान से गिरकर महासागर में तद्रूप वर्षा की बूंदों को देखना है। बूंद और सागर के समावेश को देखते जाओ, देखते जाओ, लगातार देखते जाओ, निष्पलक नेत्र से देखते रहो। अन्य कोई विचार नहीं, कोई प्रवृत्ति नहीं, कोई विक्षेप नहीं, भीतर और बाहर से एकांत साध लो।

बूंद के समुद्र में समावेश को देखते देखते दो घटना घट जाएंगी – एक तो ऊर्जा के रूपांतरण के सिद्धांत का सत्य और दूसरी, सूक्ष्म का विराट में सहज प्रवेश। आपके रूपांतरण और तद्रूपता का अस्तित्वगत रूप से होने वाले अनुभव में बूंद और सागर का मिलाप मदद कर देगा।

इस ध्यान विधि से एक साधक और अनपढ़ व्यक्ति भी किसी वैज्ञानिक व्याख्याओं को या सिद्धांतों को जाने बिना भी कह देगा कि विश्व में कुछ नष्ट नहीं होता। केवल रूपांतरित होता है।

समुद्र का जल गरमी से वाष्पीभूत होकर ऊपर उठा, वह वाष्प ऊपर जाकर घनीभूत होकर बादल बनी, उसका मूल स्वभाव शीतलता था। पृथ्वी पर गरमी बढ़ी, प्रकृति को आवश्यकता लगी, पृथ्वी तत्व को मदद करने के लिए वह बादल के रूप

में बरसने लगी। धरती को ठंडक दी और बूंद रूप में फिर से अपने मूल स्रोत में समा गई। अर्थात् समुद्र, वाष्प, बादल और फिर जल की बूंद और अंत में समुद्र – यह चक्र आदिकाल से सृष्टि में कार्यान्वित है। केवल रूप बदलता है – कुछ भी नष्ट नहीं होता।

इस समझ के बाद आत्मचिंतन सहज ही प्रस्फुटित होता है कि मैं भी रूपांतरित ही होता हूँ, नष्ट नहीं।, जो नष्ट होता दिखाई देता है वह केवल ऊर्जा और पदार्थ का रूपांतरण है। हमारी आंखें तो स्वरूप देखने की आदि हो गई हैं। वह आदत के लिए ज़िद्द करती है। पुराने की ही मांग करती है। नया स्वरूप उसे अपरिचित और धारणा विरुद्ध का लगता है। वह स्वरूप उसकी मरजी, खुशी और आदत के अनुरूप नहीं है इसीलिए रोता है, मन नाराज़ है, दुःखी है क्योंकि सबको आदत है। मनुष्य को केवल शराब या टोबेको का ही व्यसन नहीं होता; उसे स्त्री, पुरुष, सत्ता, संतान, धनादि का भी व्यसन हो जाता है। इन व्यसनो से मुक्त होना अति कठिन है। ध्यान छुड़ा देता है सारे व्यसन, समझ की औषधि के द्वारा।

ध्यान देता है विशुद्ध दृष्टि जहाँ सारा धुंधलापन नष्ट हो जाता है। ध्यान देता है साहस और हिम्मत सत्य को उसके नग्न रूप में स्वीकार करने का।

बिंदु सिंधु प्रवेश भाव ध्यान से एक दूसरी घटना भी घटती है। जहाँ साधक जाग जाता है। और उस सत्य को आत्मसात कर लेता है कि बिंदु जैसे सिंधु का ही अंश है और अंत में सिंधु में समाविष्ट होकर अर्थात् स्वयं को खोकर अर्थात् अपने अस्तित्व को समुद्र में विलीन करके स्वयं सागर रूप बन जाता है। वामन विराट बन जाता है। वैसे ही ध्यान के द्वारा ऊपर उठकर पुनः उस विराट अस्तित्व की ओर यात्रा आरंभ करके मेरे छोटे से अस्तित्व को न चिपके रहकर विराट के साथ अर्थात् मेरे मूल स्रोत के साथ मैं तदाकार हो रहा हूँ। उस मिलन की चरम सीमा पर मेरा “मैं” खो जाएगा। शायद दुन्यवि अस्तित्व मिट भी सकता है। परंतु मेरा मूल स्रोत में मिल जाना ही सार्थकता है। अगर वामन के खो जाने से विराट का आविष्कार होता है, तो भले हो।

प्रिय साधको!

यह अनुभूति ही जीव का शिवत्व में प्रवेश है। यही परम पद की अवस्था है। इस अवस्था में ही परम विश्राम का अनुभव होता है।

बिंदु का सिंधु में प्रवेश के पल और क्रिया को समग्रता से देखते रहना है। बिंदु जीव का और सागर शिव का प्रतीक बन जाएगा। सूक्ष्म और विराट के मिलन के क्षण में ही आप संकल्प विकल्प से पर की अवस्था में प्रवेश कर लेंगे। वह अवस्था ही परम ज्ञान का क्षण है।

इस ध्यान विधि में एक बात पर खास गौर करें कि बारिश में वर्षा बूंदों को सागर में मिलते हुए देखने के लिए आपको खुले आसमान के नीचे समुद्रतट पर बैठना पड़ेगा। माहोल आपकी मदद करेगा परंतु शरीर भीगेगा, भीगने दो। आप उठ जाओ शरीर से ऊपर, शरीर के प्रति ज्यादा ध्यान मत दो। बारिश का शीतल स्पर्श भी आपकी मदद करेगा। अगर स्वास्थ्य अच्छा नहीं है तो देह को सुरक्षित रखके बिंदु सिंधु मिलाप की प्रक्रिया में उतर जाओ। कम से कम ७२ मिनट तक। क्योंकि इस ध्यान को आप अन्य ध्यान की तरह कभी भी नहीं कर पाओगे। इसके लिए वर्षा की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। बारिश हमेशा उपलब्ध नहीं होती। तो कुदरत के अनुसार आपको ध्यान के लिए तैयार रहेना पड़ेगा। यह ध्यान बिल्कुल एकांत में करो। अन्य ध्यानी मित्र यदि संग में हैं तो भी अलग अलग स्थान चुन लो। इस ध्यान विधि को गृप में चर्चा या फिलॉसोफी का मुद्दा मत बनाओ। केवल भीतर अनुभव करो। अनुभव के बाद भी ज्यादा से ज्यादा मौन में उतरो। उस अनुभव का स्मरण बनाए रखो। अगर संभव है, और आपको लगता है कि इस विधि से आपको मदद मिल सकती है तो पूर्ण वर्षा काल के दौरान समय

निकालकर रोज बैठ जाओ और खो जाओ बारिश की रिमझिम में, एकांत में, ठंडक में, समुद्र की लहरों में और स्वतः जान लो आपके मूल स्वरूप को, मूल स्रोत को। छोटा सा बिंदु आपका गुरु बनकर आपको सिखाएगा विराट में मिलने की कला।

धरणा - ८

शुष्क पर्ण प्रवेश भाव ध्यान

प्रिय साधको!

दुन्यवी कोई भी बंधन या जोड़ शाश्वत नहीं है। इस सृष्टि के करोड़ों अंग हैं। जैसे नदियाँ, सागर, जंगल, पर्वत उन अंगों के भी अन्य अंग है और उन अंगों के छोटे-छोटे उपांग हैं। इन सबका जोड़ है, दुनियाँ। परंतु वह जोड़ शाश्वत नहीं। अरबों खरबों वर्ष पुरानी सृष्टि के संदर्भ में तो क्षणिक ही है।

बीज और पृथ्वी के मिलन से और जल तथा प्रकाश के सहयोग से बीज अंकुरित होता है। कल का बीज आज का अंकुर, आज का अंकुर आने वाले कल का पौधा, पौधा बड़ा होकर अर्थात् शाखा प्रशाखा से भरपूर होकर वृक्ष, शाखा प्रशाखाएं हरी भरी होती हैं पत्तों से। इस तरह पत्ते वृक्ष का अंग, वृक्ष जंगल का अंग, जंगल प्रकृति का अंग और प्रकृति किसी असीम विराट का अंग।

प्रिय साधको!

आवागमन ये सृष्टि का अटल सिद्धांत है। कुछ आएगा ही नहीं तो जाएगा कौन और कहाँ? कुछ विदा ही नहीं होगा तो पुनः नया आएगा कहाँ से? कैसे?

ये सब कुदरत की व्यवस्था है। इस स्वतः चलते रहने के रहस्य को ही हमारे ऋषि, परमात्मा कहते हैं। एक स्वचालित संचालन की वजह से मनुष्य किसी अज्ञात शक्ति के अस्तित्व का स्वीकार करता है। अगर ऐसा नहीं होता तो भगवान की धारणा उत्पन्न ही नहीं होती। परंतु जहाँ-जहाँ मनुष्य की मति नहीं पहुँच सकती, जो-जो बातें उसकी समझ और क्षमता के बाहर हो रही हैं, उन बातों के लिए वह परमात्मा को जिम्मेदार मानते हैं और उसके अदृश्य अस्तित्व का स्वीकार करते हैं। ऋषि और ज्ञानी ब्रह्मांड की स्वानुसाशित व्यवस्था को भगवान की लीला कहते हैं और जहाँ-जहाँ उस लीला से अभीभूत होकर उसके वश हो जाता है, उसे माया कहते हैं।

हमारे ज्ञानी-ध्यानियों ने उस लीला को देखते देखते देखते अस्तित्व के रहस्य को अनुभव कर लिया। दूसरों का भी इस अनुभव में प्रवेश हो, इस हेतु से ध्यानमार्ग प्रस्थापित किया और कहा कि “ध्यान करो”।

अब प्रश्न ये उठता है कि किसका ध्यान करें? भगवान तो निर्गुण निराकार है! तब ध्यानियों ने साधारण मनुष्य को कुछ धारणाएं दी, अर्थात् ध्यान विधियाँ दी और कहा कि आपके मन, बुद्धि और अहं को हस्तक्षेप करने का मौका दिए बिना केवल तीव्रभाव करते करते खो जाओ उस भाव में। उस भाव में बन जाओ भावरूप और पा लो रहस्य को। ज्ञानेन्द्रियाँ देह के विविध द्वार हैं। वहाँ से बाहर भी जाया जा सकता है और भीतर प्रवेश भी किया जा सकता है। उसको अंतर्मुख भी कर सकते हैं

और साधना का साधन भी बना सकते हैं, सबकुछ आप पर निर्भर करता है।

प्रिय साधको !

ध्यान की बहुत सारी विधियों में इन्द्रियों के माध्यम से अंतर्मुखी बनने की कला सिखाई गई है।

मूढ़ लोग देह और इन्द्रियों की निंदा करते हैं परंतु समझदार तंत्रमार्गियों ने शरीर और इन्द्रियों का आध्यात्मिक उन्नति के लिए बड़ी जागृति के साथ पूरा-पूरा उपयोग किया है। कुछ ध्यानों में श्रवण शक्ति के माध्यम से प्रवेश करना है। कुछ में दृश्यशक्ति से, कुछ में स्पर्शशक्ति से, तो कुछ में घ्राणशक्ति से।

प्रिय साधको !

मन भी इन्द्रिय ही है। उसे ग्यारहवीं इन्द्रिय माना गया है। कुछ विधियों में मन और इन्द्रियों के समेत एकाग्र होने का विधान है। अर्थात् मन, देह और इन्द्रियों से भागना नहीं है। उसका सहयोग हासिल करने की कला प्राप्त करनी है।

मैं चाहती हूँ कि भिन्न भिन्न प्रकृति के ध्यान प्रेमियों के लिए ध्यान के अनेक मार्ग खुल जाएं, इसलिए मैं योगशास्त्र, तंत्रशास्त्र, उपनिषद्, हठयोग, सहजयोग, सूफी आदि की विधियों को एक नूतन समझ के साथ आपके सामने रख रही हूँ। ताकि कठिन ना लगे। मैंने देखा है कि ध्यान विधियों के पुनराविष्कार के प्रयास से लाखों अन्वेषी लाभान्वित हो रहे हैं। हजारों हजारों खोजियों को मदद मिल रही है। आप भी उन विधियों से गुजरकर सत्य का अनुभव कर सकते हैं।

आध्यात्मिक समझ आंख को उचित दृष्टि देती है। एक ही दृश्य का असर सही समझ के पहले अलग होता है और समझ के बाद अलग। दृश्य तो जैसा था वैसा ही होता है परंतु देखने का ढंग बदल जाता है, अर्थघटन बदल जाता है, मूल्यांकन में फर्क जा जाता है।

प्रिय साधको !

अब आप समझ गए होंगे कि एकमात्र पत्ते के गिरने की बात है शुष्क पर्ण प्रवेश भाव ध्यान में। इसके लिए इतना सारा विस्तार क्यों करना पड़ा ? देखने देखने में फर्क है। स्वर्ण को पहचानने में माहिर व्यक्ति उसकी खदान में भी मिट्टी और पत्थर में छिपा हुआ स्वर्ण देख सकता है और जिसके पास दृष्टि नहीं है वह सच्चे सोने पर भी संशय करता है। आपको ध्यान विधियों के लिए सही दृष्टि मिले तब तक ही मेरी आवश्यकता है। फिर तो आप अपने ध्येय तक पहुंच जाएंगे।

ध्यान की अनेक विधियों में प्रकृति से बहुत मदद मिलती है। इसके लिए आपको प्रकृति के हर स्वरूप को प्रेम करना होगा। प्रकृति हर पल कुछ न कुछ सिखाती है। जीवन के कटु सत्य को भिन्न भिन्न रूप में घोषित करती है। जीवन के दोनों पहलुओं को हमारे सामने खोलकर रख देती है। वह जीवन का स्वीकार भी करती है, मृत्यु की घोषणा भी। ज्ञान के संदर्भ में बात करें तो वह निरासक्त भाव का परम बोध सहजता से करा देती है।

अब पहले ठीक से समझ लो शुष्क पर्ण प्रवेश भाव ध्यान विधि क्या है ? पतझड़ के मौसम में वृक्ष पर से सूखे पत्ते गिरते रहते हैं। इसे सब लोग एक स्वाभाविक दृश्य के रूप में और प्राकृतिक परिवर्तन के रूप में लेते हैं परंतु स्वयं में बोध को नहीं जगने देते हैं। ध्यान है बोध जगाने का मार्ग।

यहाँ मैंने सूखे पत्ते के वृक्ष से गिरने की प्रक्रिया को ध्यान विधि में समाविष्ट किया है। यह विधि बड़ी सहज, सरल फिर भी अत्यंत असरकारक है।

पतझड़ के मौसम में किसी भी वृक्ष के निकट जाकर बैठ जाओ। आंखों के माध्यम से लगातार देखते रहो गिरते हुए पत्तों को। पत्ता चुपचाप गिर रहा है, न कोई आवाज़, न कोई शिकायत, न पेड़ को कोई खरोंच, ना शोक, ना विषाद। वृक्ष और सूखे हुए पत्ते की परस्पर की निरासक्ति के दर्शन का यह अमूल्य अवसर है। इसे मत गवां।

कभी कभी गीता का अनासक्ति योग जिंदगीभर पढ़ते रहने से अथवा श्लोक रट लेने से भी वह अनासक्ति का भाव भीतर नहीं उभरता। जीवन तो आसक्ति की पीड़ा में ही व्यतीत होता रहता है। गीता का ज्ञान बेचारा हो जाता है। शास्त्र से कोई मदद नहीं मिलती। थोड़ी रेडीमेड जानकारी मस्तिष्क में भर गई, परंतु निरर्थक। रटी हुई बातें जिंदगीभर दूसरों को बताते रहें परंतु सत्य को खुद ने नहीं जाना – ये कैसा बेतुका लगेगा ? जैसे किसीके पास कोहीनूर है परंतु भूखा प्यासा गरीबी में मर रहा है। मैं चाहती हूँ कि साधक एक शहेनशाह की भांति जीए और मृत्यु से भी अमर हो जाए।

प्रिय साधको !

गिरते हुए सूखे पत्ते से प्रेरणा ले लो। बनालो उसे अपना गुरु, समग्रता से अपनी सारी ऊर्जा उसकी ओर मोड़कर देखते रहो। वह प्रतीक आपको अनासक्ति भाव में प्रवेश करा देगा। जो भगवत गीता नहीं कर पाई, जो मंदिर या पूजा-पाठ किसी से न हुआ, वह हो जाएगा स्वतः एक ही क्षण में।

प्रतीकों की बहुत बड़ी महिमा है—प्रतीक हमारे साथ बचपन से जुड़े हैं। प्रतीक के द्वारा हमारी चेतना किसी भी चीज़ को बहुत जल्दी से समझ सकती है। बचपन में हमें स्कूल में शिक्षक क-ख-ग बाराक्षरी के अक्षर कलम, खड़िया, गणेश आदि प्रतीकों के द्वारा सिखाते थे। इससे हम वर्ण और वस्तु दोनों को एक साथ चित्र के द्वारा सहजता से समझ जाते थे। हाँ! चित्र का गणेश भले सही गणेश नहीं है परंतु गणेश का प्रतीक हमें धारणा दे देता है गणेश के स्वरूप की।

ध्यान में भी ये प्रतीक आध्यात्मिक समझ को विकसित करने में बड़े उपयोगी होते हैं। सही समझ बढ़ती है और तर्क कुतर्क खो जाते हैं। निर्विकल्पावस्था प्राप्त हो जाती है।

वृक्ष से सहजता से अलग होते हुए सूखे पत्तों को देखते रहो, कम से कम २४ मिनट तक। कोई विचार नहीं, कोई क्रिया नहीं, संभव है तो घंटों तक इस ध्यान में उतर जाओ। आपको प्रश्न होगा कि घंटों तक क्यों ? इसलिए कि आपकी आसक्तियाँ बहुत पुरानी हैं। आप भले पाँच-पचीस या पचास साल के हुए, परंतु आसक्तियाँ, वासनाएं तो सैंकड़ों साल पुरानी हैं। वह पुराना बंधन, पुरानी आदत से मुक्त होने के लिए इस ध्यान विधि के द्वारा आपके मन को पर्ण को देखते देखते मुक्ति के विचार से संस्कारित होने दो। एक क्षण ऐसा आएगा कि विधि सार्थक हो जाएगी। मन में सहजता से ही निरासक्ति का आविर्भाव होगा जो थोपा हुआ नहीं, किसी के द्वारा उपदिष्ट नहीं परंतु स्वयंस्फूर्त होगा और यही ज्ञान सहायता कर सकता है। उधार ज्ञान से शाश्वत कल्याण नहीं हो सकता।

तो आपके मन में इस ध्यान विधि के द्वारा बोध जगने दो, कि “मैं संसार वृक्ष का एक छोटा सा अंग हूँ। वक्त आने पर मुझे चुपचाप उस वृक्ष से अलग हो जाना है। ये मेरी परम मुक्ति का क्षण है।”

वृद्धावस्था का स्वीकार, मृत्यु का स्वीकार शांतिपूर्ण हृदय से देहत्याग और संसार से मुक्ति। यह सारी घटनाएं ध्यान में ही घट जाएंगी। बिना आयास प्रयास का चिंतन उतरेगा। जो बुद्धि से नहीं परंतु केन्द्र में से आएगा।

मज़े की बात तो यह होगी कि यहाँ साधक स्वयं बंधन, स्वयं बोध करने वाला, स्वयं बोध कराने वाला और स्वयं मुक्त होने वाला दूजे की कहीं जगह ही नहीं है। कर दिया चमत्कार एक छोटे से सुखे पत्ते ने। हवा के साधारण झोंके से हिलते डुलते और गिरते उड़ते हजारों पत्ते मनाते हैं वृद्धत्व, मृत्यु, अनासक्ति, मुक्ति और परिवर्तन का उत्सव।

धरणा - ९

महाएकान्त भाव ध्यान

प्रिय साधको !

विश्व की सबसे सुंदर और सबसे अद्भुत घटनाएं एकांत में घटती हैं। परम प्रेम, परम ध्यान और परम ज्ञान ये तीनों घटनाएं एकांत में ही घट सकती हैं, एकांत में ही पूर्ण रूप से निखर उठती हैं।

अध्यात्म जगत में एकांत की बहुत बड़ी महिमा है। एकांत और अकेलेपन में बहुत फर्क है। याद रहे ! जब तक आपको अकेलापन महसूस हो रहा हो तब तक समझ लेना कि एकांत की क्षण भी आपके लिए एकांत, शांतिप्रद या सफल नहीं है। एकांत को पाने के बाद भी आप एकांत को न पा सके, एकांत को पचा नहीं सके, आपकी भीड़ में जाने की आदतों ने आपके एकांत को दो कौड़ी का कर दिया। आपने नुकसान कर दिया आपका ही।

प्रिय साधको !

एकांत शांति देता है। एकांत आनंद देता है। एकांत कुछ अद्भुत को जन्म देता है। एकांत रचनात्मक होता है। एकांत में परम मौन बरसता है। एकांत अवसर लगता है। एकांत में सहज अद्वैतता प्राप्त होती है, प्रसन्नता प्राप्त होती है। और एकाकीपन आपको बेचैन कर देता है। एकाकीपन दूसरे की खोज करता है। एकाकीपन में आदमी खुद से ऊब जाता है। एकाकीपन अशांत कर देता है मन को, एकाकीपन में आदमी दुःखी हो जाता है। अखबारों में आप पढ़ते होंगे एकाकीपन से तंग आकर मनुष्य आत्महत्या तक कर लेता है। यह फर्क है एकांत और एकाकीपन में।

महाएकांत ध्यान विधि के पहले एकांत और अकेलेपन का फर्क बताना बहुत जरूरी था। कभी कभी कच्ची समझ के कारण कुछ अपरिपक्व साधक मनगढ़ंत अर्थ लगाकर विधियों में गड़बड़ कर देते हैं। मैं नहीं चाहती हूँ कि आप से ऐसा हो, इसीलिए विस्तार करती हूँ। मुझे पता है कि कुछ लोग केवल विधि जानने में ही उत्सुक होते हैं। वे सबकुछ जल्दी जल्दी सीख लेना, जान लेना और कर लेना तथा पा लेना चाहते हैं। परंतु अध्यात्म जल्दबाजी का विषय नहीं। यह पूर्ण धैर्य और अविरत साधना का क्षेत्र है।

ध्यान कुछ करने या जानने की विधि नहीं है। वह है संपूर्ण अक्रिया में प्रवेश करके जानी हुई चीजों में से जो कुछ भी अनावश्यक है उससे मुक्त हो जाने की कला। बात या विधि को समझाने के लिए हम भले कोई भी शब्दों का प्रयोग करें परंतु शब्द ध्यान के सामने छोटे पड़ जाते हैं। शब्द तो वाणी, मति मन और इन्द्रियों का विषय है। ध्यान महाचेतना के साथ सीधा अनुसंधान है। बेचारे शब्द कैसे समझा पाएंगे उस महासत्य को ! फिर भी शब्द सरल और अंतिम सहारा है साधारण मनुष्य के लिए, जिसका मुझे आधार लेना पड़ता है, कुछ इशारा करने के लिए।

ज्यादातर मनुष्य शब्द की भाषा ही समझते हैं। हम शब्दों के माध्यम से उन्हें धीरे-धीरे ध्यान की भाषा तक पहुंचाने का प्रयास करते हैं। ध्यान की भाषा जब समझ में आने लगती है तब शब्द गौण बन जाते हैं परंतु तब तक शब्द सहायता करते हैं।

प्रिय साधको !

एकांत का अभ्यास करो, एकांत से प्रेम करना सीखो। एक बार जब एकांत को प्रेम करना सीख लेंगे फिर किसी के भी प्रेम की जरूरत नहीं रहेगी। परंतु यह घटना अनुभव से ही समझ में आएगी। अपने एकांत को खोज लो, खुद के लिए समय निकालो, आपके एकांत पर किसी के भी द्वारा आक्रमण न होने दो, उसे सुरक्षित रखो, वह आपको बहुमूल्य जीवन देगा।

इतना ही नहीं, परंतु अन्य के एकांत को भी खंडित मत करो, आपके बोलने, चलने, उठने, बैठने और सोचने का ढंग ऐसा होना चाहिए कि दूसरे के एकांत को खतरा न पहुंचे। किसी के एकांत और शांति का भंग करने का आपको कोई अधिकार नहीं। भले वह कोई भी हो; आपका बच्चा, पत्नी, पति, माता, भाई, बहन या मित्र कोई भी परंतु आपको पता चले कि आपकी उपस्थिति, शब्द या क्रिया को उसके एकांत के वर्तुल में प्रवेश देने का अवसर नहीं है, तो दूर हट जाओ। अधिकार मत जताओ,

आपके अकेलेपन को दूर करने के लिए अथवा अपने मनोरंजन के लिए प्रेम, रिश्ते और अधिकार के नाम से दूसरों का इस्तेमाल करना ये मानसिक और आध्यात्मिक अपराध है। मेरी दृष्टि से एक सूक्ष्म रूप से अन्टिसोसीयल एक्टिविटी है— क्योंकि व्यक्ति से समाज बनता है। एक की शांति अनेक को शांति दे सकती है, एक का विक्षिप्त मन अनेकों को विक्षेप पहुंचा सकता है। दूसरे के एकांत में खलल पहुंचाना ये भी एक प्रकार की सूक्ष्म हिंसा है।

परमात्मा का अनुभव हमेशा एकांत में होता है। शास्त्रों को, पुराणों को, धर्मग्रंथों को और दृष्टांत कथाओं को देखो – भीड़ में तो कभी कभार अपवाद रूप से भगवान किसी भक्त को मिले हों तो ये अलग बात है परंतु अधिकतर तो एकांत में साक्षात्कार होने के किस्से ही सुने हैं, पढ़े हैं।

भजन, कीर्तन या ध्यान में भले कितनी भी भीड़ हो, परंतु आप जब आंख बंद करके उसमें तल्लीन होते हैं तब आपके इर्दगिर्द भीतरी एकांत का एक वर्तुल बनता है और उस क्षण में आप मस्ती का, आनंद का, शांति का अनुभव करते हैं। एक सर्जक, एक चित्रकार, एक कवि, एक कलाकार अपने एकांत में ही कुछ अद्भुत चीजों का निर्माण कर सकता है।

मनुष्य को स्वर रचना, गीत रचना, शब्द रचना या चित्र रचना जैसे विषयलक्षी कार्यों के लिए भी एकांत की आवश्यकता है। अरे! संसार के भोग भोगने के लिए स्त्री पुरुष के शारीरिक समागम जैसी स्थूल क्रिया के लिए एकांत जरूरी है। एक शरीर में से दूसरा शरीर जन्म ले रहा है ऐसे प्रसूति के वक्त तक एकांत जरूरी है। बच्चे को स्तनपान कराने में एकांत की जरूरत है, बीज को भूमि में से बाहर आने से पहले एकांत जरूरी है। अरे, पक्षियों को भी अंडे देने के लिए एकांत और शांति की आवश्यकता है। तो जरा सोचो, समझो कि व्यक्तिगत चेतना को वृहद चेतना के साथ तार जोड़ना है तब एकांत कितना आवश्यक होगा ?

जब स्थूलता ज्यादा मदद नहीं कर सकती हो और विषय, मन और बुद्धि के परे का हो तब तो गहन एकांत की आवश्यकता है। उस गहन एकांत में ही साधक अपनी अतिचेतस शक्ति के परिचय में आ सकता है।

प्रिय साधको !

मैं जो ध्यान विधि बताने जा रही हूँ उसमें दोनों प्रकार के एकांत अत्यंत महत्वपूर्ण हैं; भीतरी एकांत और बाहरी एकांत। कभी कभी बाहरी शोर-शराबा भीतर के नए-नए एकांत को विचलित कर देता है। इसलिए ध्यान रहे इस विधि का नाम मैंने दिया है – “महाएकांत भाव ध्यान” – चले जाओ दुनिया से दूर, बहुत दूर – स्वयं के लिए और इस विधि के लिए थोड़ा समय ढूंढ लो, चुरा लो आपका समय। दुनिया आपके एकांत का नाजायज़ फायदा उठा रही है। आपके एकांत की हत्या कर रही है। उसे बचा लो। एकांत ही आदि अनादि है। वही शाश्वत है। वही सर्वकालीन है और कुछ भी रहे ना रहे परंतु विश्व में एकांत हमेशा रहता है। वह तो परमात्मा का स्वभाव है।

कभी कभी ऐसा होता है कि साधक के भीतर शांति और एकांत होते हैं परंतु बाहर की दुनियाँ विक्षेप करती है। देखो ना! भगवान के घरों में भी कितनी भीड़ और शोर है ? हंगामा मचाने की आदत से मजबूर मनुष्य परमात्मा के नाम पर भी हंगामा मचाता रहता है। बच निकलो इस हंगामे से, बनाओ अपनी स्वतंत्र पगडंडी। जहाँ आप अपने बलबूते पर अकेले ही चलना सीखो। ये पगडंडी है, ध्यान।

महाएकांत भाव ध्यान में मैंने मरुस्थल में दृष्टिस्थिर करने की विधि बताई है। आपको लगेगा कि मरुस्थल ही क्यों ? इसका कारण है, मनुष्य सुविधाओं के पीछे पागल है और असुविधाओं से दूर भागता है। साधना के मार्ग में कभी-कभी सुविधा असुविधा है और असुविधा ही सुविधा। बाग, बगीचे, नदी, तालाब, जंगल में मानव और पशु-पक्षियों की ज्यादा चहल पहल होगी। प्रकृति के अंगों में अगर कोई सबसे ज्यादा शांत और एकांतपूर्ण अंग है, तो वह है, मरुस्थल। वहाँ जल

नहीं, फल नहीं, छाया नहीं, जीवन की कम से कम संभावनाएं।

मैं कहती हूँ कि ध्यान महामृत्यु का साक्षात्कार है। एषणाओं की मृत्यु, आशाओं की मृत्यु, इच्छाओं की मृत्यु, वासनाओं की मृत्यु, बंधनों की मृत्यु और एक अर्थ में सार्थक नवजीवन।

स्वैर! अगर संभव है तो इस ध्यान के लिए चले जाओ मरुस्थल में। लगाओ ध्यान शिबिर, कम से कम एक सप्ताह रहो मरुस्थल में। अनिवार्य दैहिक कार्यों से निपट कर बैठ जाओ ध्यान में – मरुस्थल का भी एक सौंदर्य है अगर आप देख सकें तो वह शांति और एकांत की वजह से है। नहींवत चहल पहल, दोपहरी में गरमी के असल रूप का अहसास, शाम को ठंडी का।

आपने कभी ध्यान से देखा है रेत कणों को। अरबों खरबों कण साथ में रहते हैं परंतु मिट्टी के ढेले की भांति वे एक दूसरे को चिपकते नहीं, उसका स्वतंत्र अस्तित्व बनाए रखते हैं। कोई भी रस उसे भीगे हुए नहीं रख सकता। निरस होना एक बात है और विषय रस से अलिप्त रहना दूसरी बात है। साधना के लिए हर प्रतीक काम का है। जहाँ कहीं से भी यत्किंचित प्रेरणा मिले उसे बिना तर्क-कुतर्क के हकारात्मक दृष्टि से आपके आध्यात्मिक विकास के लिए स्वीकार कर लो।

सत्य के लिए जब मरुस्थल की दहकती रेत सी प्यास आपके दिल में जगेगी तभी उसका उद्घाटन होगा। भीतर और बाहर महाएकांत के माहोल में परमात्मा उतरने लगेंगे। रेत में कोई भी पद चिन्ह, चित्र या निशान लंबे अरसे तक टिक नहीं पाते। बहुत जल्दी ही मिट जाते हैं सारे निशान। रेत धंसती रहेती है, निशान मिटते रहते हैं। साधक का हृदय भी ऐसा ही होना चाहिए। सांसारिक निशानों को हमेशा के लिए गले मत लगाओ। आपकी आंतरिक और सूक्ष्म तथा आध्यात्मिक चहल पहल से मिटने दो उन निशानों को। बने रहो सहज स्वाभाविक। प्रसन्न रहो अपने मूल स्वरूप के साथ। भले ठंडी हो या गरमी, मत गवाओ अपनी चमक, अपनी घनता, मिट्टी का ढेला मत बनो। जो जल्दी ही पिघल जाए, थोड़े से पानी में। छोटे छोटे आकर्षण से आप पिघल जाएंगे तो केवल मिट्टी के बर्तन बन जाएंगे, मूर्ति बनकर कभी भी मंदिर में प्रतिष्ठित नहीं हो पाओगे। आपको परमात्मा के सूक्ष्म मंदिर में प्रतिष्ठित होना है। लोगों को भले आप पत्थर दिल लगेंगे परंतु पत्थर से ही पावन गंगा बहती है। और नदी के पावन जल की चोट से ही पत्थर घिस घिस कर टूट टूट कर, छोटा होते होते होते रेत का रूप लेता है। बड़े संघर्ष के बाद पत्थर रेत का रूप लेता है। कठोर होते हुए भी रेत बिस्तर सी मुलायम बन सकती है। आप पत्थर पर ज्यादा देर नहीं सो सकते हैं परंतु रेत गद्दे का काम करती है।

प्रिय साधको!

मरुस्थल की रेत पर बैठकर दूर दूर तक के निरव मरुस्थल को देखते रहो। संपूर्ण खाली और शांत सहेरा को देखते देखते साधक महाएकांत में सहजता से उतर जाता है। वहाँ किसी भी आलंबन या आधार के बिना सहज ही अन्य सारे भाव शून्य हो जाते हैं। तथा भीतर और बाहर के एकांत से विकसित एक महाएकांत के क्षण में साधक को सहज ही प्रबुद्ध पद की प्राप्ति हो जाती है। संकल्प विकल्प से उस पार की अवस्था ही प्रबुद्धावस्था या “शिवोहं”, “सोहं” भाव की मूल घोषणा है।

धरणा - १०

मृगमरीचिका दर्शन ध्यान

प्रिय साधको!

आपने मृगमरीचिका देखी होगी, जिसे मृगजल भी कहते हैं। मृग के दो अर्थ होते हैं। हिरन और मनुष्य। दोनों भ्रम के

पीछे भागते रहते हैं। जीवन भर भागते रहते हैं। भागना उसका स्वभाव बन गया है। लालच उसको दौड़ाती रहती है। हिरन मनुष्य से ज्यादा प्रमाणिक है। उसे वास्तव में पानी की प्यास है। वह पानी की खोज में मृगमरीचिका की ओर दौड़ता है। उसकी मृगमरीचिका एक ही प्रकार की है परंतु मनुष्य तो सैंकड़ों प्रकार की मृगमरीचिका खड़ी कर लेता है, उसके पीछे दौड़ता है। अपनी वासनाएं पूरी करने के लिए थक जाता है। फिर खड़ी कर लेता है, दूसरी... तीसरी... बार बार हारता है, थकता है, खड़ा होता है। मन को मनाता है। और अबकी बार तो लोटरी जरूर लग जाएगी, ऐसा मानकर फिर से भागता है और कभी सत्य को पाए बिना ही मर जाता है। स्वाभाविक है कि आप जिसकी खोज करोगे ऐसा मिलेगा। भ्रम को पालेंगे तो भ्रम में ही रहोगे, सत्य की चाह करोगे तो आपके सामने सत्य प्रगट होने लगेगा।

प्रिय साधको!

ध्यान विधि समझाने से पहले इतनी बात करनी जरूरी थी। हमारी विधियाँ चल रही हैं, कुदरत के आधार पर। कुदरत के अनेक रंग हैं। अनोकोनेक रूप हैं। कुछ प्रत्यक्ष स्वरूप ऐसे हैं कि जो दिखाई दे रहे हैं वही परम सत्य है। कुछ प्रत्यक्ष होने पर भी वहाँ कुछ भी नहीं है। जैसे कि क्षितिज और मृगमरीचिका – मैं कहती हूँ कि मृगमरीचिका में आपको जो दिखाई देता है वह नहीं है। परंतु आपमें समझ है, आपका चित्त खुला है, आपके पास अंतरदृष्टि है तो वह भी एक अनुभव है और वह अनुभव भी केवल कुदरत के इस अनूठे माया स्वरूप का। सत्य अगर कुदरत के पास से आसानी से सीख सकते हैं तो जिंदगी में मार खाकर सीखने की जरूरत क्या है? कुदरत सबसे बड़ा शास्त्र है, सबसे बड़ा धर्मग्रंथ है। सबसे बड़ा उपदेशक है। आप केवल खुले मन और खुली दृष्टि से उसे देखकर समझने का प्रयत्न करो।

कुछ संतो ने कुदरत को ही भगवान कहा है। तो उस भगवान की भी कुछ माया है। माया के सहयोग से भी माया के पार जाया जा सकता है। इसलिए मैंने यहाँ मृगमरीचिका का ध्यान विधि के रूप में समावेश किया है।

मैं साधकों से कहती हूँ कि जहाँ कहीं से भी आपको जगने की संभावना लगे। जड़, चेतन या कोई भी परिस्थिति आपको झकझोर दे, आपके मन को आत्मचिंतन करने के लिए प्रेरित करे; उन सबको साधन बनालो साधना के लिए। ऐसा नहीं कि केवल मैंने बताई ये विधियाँ अंतिम हैं, ऐसा भी नहीं कि तंत्र, सूत्र साहित्य या वेदांत की बताई हुई विधियाँ ही अंतिम हैं। मेरे बहुत पहले से ये कार्य आरंभ हुआ है और जब तक मानव सृष्टि का आविर्भाव होता रहेगा तब तक ध्यान मनुष्य के लिए अनिवार्य हो जाएगा। ध्यान की हजारों हजारों विधियाँ हो सकती हैं। आप अनेक चीजों को साधन या माध्यम बनाकर सत्य में प्रवेश कर सकते हैं।

प्रिय साधको!

कुदरत के बहुत सारे स्वरूपों से मनुष्य दूर चला गया है। विज्ञान और टेक्नोलोजी के विकास से बाहर का जीवन गतिशील हो गया परंतु भीतर की गति मंद हो गई है। मनुष्य के मस्तिष्क की गति बढ़ गई परंतु आध्यात्मिक रूप से वह पंगु बनता जा रहा है। कदम-कदम पर केलक्युलेटर के उपयोग ने उसकी संवेदनाओं का और आंतरिक सूझ-बूझ का गला घोट दिया है।

मनुष्य का मस्तिष्क इतना व्यस्त रहता है कि प्रेम की क्षणों में भी उसका मन हिसाब-किताब करता रहता है। खुली बाइक पर जाने वाले के शरीर से पसीना निकलता है – जरा सोचो तो सही! उसका मन कितना व्यस्त, व्यग्र, थका हुआ और अस्वस्थ होगा। सेलफोन ने सुविधा बढ़ाई और शांति छीन ली। विज्ञान और टेक्नोलोजी का हेतु था मनुष्य का समय बचाना, ताकि बचे हुए समय का मनुष्य आत्मशांति के लिए सदुपयोग कर सके – परंतु बेचारा मनुष्य! गाड़ियों का उपयोग करके तीन गुना दौड़ने लगा। आर्थिक लाभ जल्दी होने लगा परंतु कभी भी वसूल न हो ऐसे आंतरिक नुकसान को मोल लिया।

कितनी मूढता ! ऐसे लोग दया के पात्र हैं।

ऐसे अस्वस्थ और जीतकर भी हारे हुए मनुष्य के लिए पृथ्वी पर फिर से एक बार मैं ध्यान की अनेक विधियाँ समय की माँग के अनुसार लेकर आई हूँ। मैं कहती हूँ कि यथासंभव मेरी उपस्थिति का लाभ ले लो।

मृगमरीचिका का दृश्य तो रास्ते में सहज ही मुफ्त में उपलब्ध होता है। स्वास करके ग्रीष्म ऋतु में, गरमी के दिनों में आप हाई-वे पर जाते हो तब रोड पर यह दृश्य स्वाभाविक ही दिखाई पड़ता है। परंतु आपके चित्त के पास उसे स्वास दृष्टि से देखने का और समझने का समय कहाँ ? आप तो फोन में, एस.एम.एस. में, सेन्सेक्स में या अन्य स्वपनों में व्यस्त हो। दृश्य नजरो के सामने आता है, चला जाता है। आपकी कोई मदद नहीं कर पाता क्योंकि आपका सहयोग नहीं था।

प्रिय साधको !

अस्तित्व का सीधा नियम है कि आप अगर कुछ पाना चाहते हो तो पहले देना शुरू करो। किसी को कुछ भी देने के लिए आपका हृदय प्रेमपूर्ण होना जरूरी है। प्रेम के बिना मनुष्य कुछ भी दे नहीं सकता। स्वार्थी मनुष्य केवल माँग सकता है, संग्रह कर सकता है, कुछ दे नहीं सकता। अगर देगा तो भी दुगुना पा लेने की लालच से देगा। अगर आपने ऐसा किया तो आपका देना दूषित हो जाएगा। तो जब वह वापस लौटा देगा तो भी दूषित होकर लौटेगा।

खैर ! प्यारे साधको !

ध्यान विधियों को प्रेम करना सीखो। आप उसकी ओर शुद्धभाव से समग्र रूप से लक्ष्य देंगे तो वह आपको असाधारण परिणाम देंगी।

परंतु याद रहे ! आपका कर्तव्य है विधियों में प्रेमपूर्वक उतरना, परिणाम की लालच नहीं रखना। ध्यान विधि स्वयं ही साधना, साध्य और सिद्धि सबकुछ है।

प्रिय साधको !

जब कभी भी मृगमरीचिका के दर्शन का मौका मिले तब सबकुछ भूलकर कुछ देर के लिए रुक जाओ। उसे देखते रहो, देखते रहो। आपको लगेगा कि रास्ते पर पानी भरा है। उसे देखते रहो, वह दृश्य इतना प्यारा होता है कि उसमें डूबते ही विचारशून्यता उतरेगी। फिर धीरे धीरे पैदल चलते चलते उसके करीब जाओ। जैसे जैसे आप करीब जाएंगे वैसे वैसे अदृश्य होती जाएगी। जहाँ वह दिखाई दे रही थी वहाँ पहुंचेंगे वहाँ फिर से वही तपती-सुलगती सड़क को पाएंगे। क्या हुआ ? आपकी आंख ने धोखा दिया, मन ने भ्रमजाल फैलाया था कि पानी अदृश्य हो गया ? अचानक आपका मन आश्चर्य से भर जाएगा। वह क्षण भी परम बोध का क्षण है। उस क्षण में सत्यबोध उतर आएगा, उस क्षण को बचालो। स्मरण रख लो। समझ जाने दो आपके मन को जगत का मिथ्यात्व, निरर्थकता, असत्यता।

प्रिय साधको !

कम से कम एक बार तो इस विधि में से अवश्य गुजरना। आपके बच्चों को भी इस सत्य से अवगत कराना। जीवन में स्त्री से लेकर बहुत सारी ऐसी बातें हैं कि शीतल जल की चाह में उसे पाने के लिए भाग भाग कर थक जाते हैं और अंत में जानलेवा प्यास बढ़ती है और सत्य कुछ और ही होता है। मृग दौड़ता भी है तो ठीक है कि वह एक पशु है, उसके पास बुद्धि नहीं है परंतु रेशनल एनिमल जब मृग की भांति दौड़ता है तब ज्यादा हास्यास्पद लगता है।

ऐसी हास्यास्पद स्थिति में से बचने के लिए भी मृगमरीचिका को बनाओ ध्यान का विषय। आपने बहुत बचपने कर लिए दुनिया को हंसने का बहुत मौका दिया। बेरहम दुनिया ने आपकी पीड़ाओं में से खूब मजा लिया। अब तो जागो !

अब फिर से एक बार सहेतुक निकलो मृगमरीचिका को ढूँढने। देखते जाओ, उसके करीब जाओ, भ्रम को बनता

हुआ और टूटता हुआ देखो। आपके मन को प्रशिक्षित और परिपक्व होने दो। समझ की एक ही किरन काफी है जीवन भर की विविध रंग रूप वाली मृगमरिचिकाओं से हमेशा हमेशा छूट जाने के लिए। उतरो ध्यान में। परम सत्य को पा लो। अतीत और भविष्य से मुक्त हो जाओगे। निरर्थक भागना बंद हो जाएगा।

धरणा - ११

आकाश ध्यान

प्रिय साधको!

आकाश एक विराट शून्यता है। स्पेस के बिना कोई भी चीज विकसित नहीं हो सकती, फैल नहीं सकती, आकाश विकास का अवसर देता है।

आप सोचो! आकाश अर्थात् खालीपन नहीं होता तो पंखी उड़ते कहाँ? बादल बनते कहाँ? कैसे बरसते? वृक्ष ऊपर कैसे उठता? हवा कैसे चलती? सूरज, चांद, सितारे खुलेपन के बिना कैसे जगमगाते? मनुष्य प्लेन कहाँ चलाता? और कहाँ बनती हाईराईज़ बिल्डिंगें?

हाँ, मनुष्य ने भले समंदर में बंकर बना लिए। भले अंडरग्राउंड कंस्ट्रक्शन कर लिया परंतु आखिर कहाँ तक? कितना महंगा पड़ता है ये सब? खुले आसमान के बिना मनुष्य कहाँ से पाता शुद्ध हवा! प्राणवायु!

अब शायद आपकी समझ में आ गया होगा कि आकाश का कितना महत्व है, वैसे तो सब समझते हैं थोड़ा बहुत तो अपने अपने स्वार्थ के संदर्भ में। सत्य को जान लेते हैं, परंतु जानने से क्या? ध्यान विधियाँ आपका पूर्णसत्य में प्रवेश कराती हैं। सत्संग कभी न सोची या समझी हुई बातों पर सोचने और समझने के लिए आपको विवश करके स्वेच्छिक रूप से यत्न करने के लिए तैयार कर देता है और किसी भी बात को जब मनुष्य स्वेच्छा से करता है तब उसकी सुवास और सौंदर्य और बढ़ जाता है।

मेरा कार्य केवल ध्यान विधि समझा देना या बता देना नहीं है। मैं चाहती हूँ कि आपका चित्त विधि के लिए प्रेरित हो, प्रोत्साहित हो और सक्रिय हो। इसलिए मनुष्य मन की परतों को हटाना पड़ता है। विधि के उपरांत भी कुछ बातें करना मेरे लिए अनिवार्य है। यह सत्संग आपको संशय मुक्त कर सकता है। आपकी कुछ समस्याओं का समाधान सहज ही दे सकता है। आपको पलायन करने से रोक सकता है। आपके रसायनों को विधि में उतरने के लिए तैयार कर सकता है।

आकाश ध्यान एक अत्यंत सरल और सर्व स्थान में उपलब्ध विधि है। इसके लिए आपको कोई खास आयास प्रयास नहीं करना पड़ेगा। हाँ! स्वार्थाध मनुष्य ने धरती और आकाश को भी बाँट लिया है। जैसे जैसे दीवारें खड़ी होती जा रही हैं वैसे वैसे आकाश छोटा होता जा रहा है। मनुष्य के भीतर की और बाहर की दीवारें आकाश को निगल रही हैं। पहले घर के आंगन में बैठकर मनुष्य विशाल आकाश को मिल सकता था। आज आंगन बंट गया तो आकाश भी बंट गया। कोलाहल और हंगामे ने आकाश की शांति को भी विक्षिप्त कर दिया है। कम से कम आप बचा लो अपने आकाश को, भीतर के अखंड आकाश को भ्रामक टुकड़ों में मत बाँटना।

खुला आकाश मनुष्य को खुलेपन में रहने देता है। आज का मनुष्य भीतर और बाहर से बंद होता जा रहा है। ये बंधपना

या खुलने का अवकाश न मिलने के कारण डिप्रेशन, तनाव, सीज़ोफ़ेनेटिज़्म और अपराध एवं आत्महत्या के किस्से बढ़ रहे हैं।

मैं मनुष्य को फिर से एक बार सच्चे मनुष्य के रूप में देखना चाहती हूँ। उसकी मानवता को जीवंत रखना चाहती हूँ। उस मानवता को जीवंत रखने के लिए कुदरत का सांनिध्य अनिवार्य है। इसलिए ध्यान-विज्ञान रहस्य का पूरा एक विभाग कुदरत और मानव मन पर आधारित ध्यान विधियों को दिया है।

प्रिय साधको!

खुलापन हर मनुष्य को अच्छा लगता है। यह खुलापन ही आकाश तत्व के स्वभाव का परिणाम है। मनुष्य खुलकर जिए ये बहुत जरूरी है। जो खुल नहीं सकता तो विकृत या संकुचित हो जाता है। ध्यान शास्त्रों को छोड़कर करीब करीब सारे धर्म शास्त्रों में कुछ ऐसा हस्तक्षेप हुआ है कि वहाँ मनुष्य खुलने की बजाय ज्यादा से ज्यादा बंदपना और संकुचितता के लिए शिक्षित हो रहा है। धर्म के नाम पर थोपी गई इन संकुचितताओं ने अनेकोनेक पीढ़ियों को असहज बना दिया है। मैं कुछ ध्यान विधियों के द्वारा फिर से आपको एक सहज स्वाभाविक और कुदरती जीवन प्रदान करना चाहती हूँ।

मैं कहती हूँ कि बंद मंदिरों की भीड़ में जाने से ज्यादा जरूरी है आज के मनुष्य के लिए खुले आकाश के तले बैठना। ओवर ट्राफिक की वजह से राजमार्गों से लेकर मंदिरों तक में सफोकेशन महसूस हो रहा है। भगवान के दर्शन के लिए भीड़ के धक्के खाना, अशुद्ध और घुटन पूर्ण माहोल में लाईन में खड़े रहना बिल्कुल नासमझी है। भगवान के दर्शन के लिए इतना दुःखी होना जरूरी नहीं है। कहीं कहीं तो मैंने देखा है कि पर्याप्त हवा प्रकाश के अभाव में धूप-दीप की सुगंध से भी श्वास में खांसी और घुटन पैदा होती है। निकलो इस माहोल से बाहर, निकल जाओ भीड़ से दूर। परमात्मा को अपने प्रेमी से कम मत समझो, वह परम और शाश्वत प्रेमी है। वह अदृश्य रहकर आपको बहुत कुछ देते हैं। बिना कुछ मांगे उसका प्रेम सच में “वन वे लव” है। प्रेमी को एकांत में मिला जाता है। निकलो धर्मस्थानों की भीड़ से बाहर। आ जाओ अंबर तले और अनेक अनेक रूपों में उसे पा लो। कभी वो हवा बनकर, कभी प्रकाश बनकर, कभी बादल बनकर, कभी सूरज बनकर, कभी चांद बनकर, कभी सितारे बनकर, कभी ओस बनकर और कभी शीतलता या बारीश बनकर आपको छू लेगा। आपमें नए प्राणों को भर देगा।

यह विधि अत्यंत सुंदर है, आसान है। सहज उपलब्ध है। आकाश तो आकाश है, दिन में बैठो कि रात में। वह तो सदैव सबके लिए खुला है। परंतु यहाँ विधि में मैंने रात्रि के आकाश पर ज़ोर दिया है। रात में आकाश ज्यादा अद्भुत, शीतल और सुंदर होता है। उसके अंधकार का भी एक आनंद होता है।

दिन में आसमान के तले बैठोगे तो सूर्यताप से त्रस्त हो जाओगे। विक्षिप्त हो जाओगे। आपका देह रूपी साधन विचलित होगा तो साधना में बाधा आएगी। इससे बेहतर है कि रात की निरव शांति में बैठ जाओ। खुले आसमान के नीचे, आपके छोटे से घर की टेरेस पर भी बैठ सकते हो। पूर्ण एकांत अनिवार्य है।

अन्य ध्यानी साथ में हों तो भी दोनों थोड़ी दूरी पर बैठना कम से कम छः फुट। क्योंकि शरीर की विशेष ऊर्जा के बारह स्थानों में से अंतिम स्थान का नाम है “व्यापिनी”। तंत्र शास्त्र कहता है कि ये व्यापिनी शक्ति मनुष्य के इर्द गिर्द छः फुट के दायरे को घेर लेती है। और अपना प्रभाव पहुंचा सकती है। सिद्ध पुरुष इस शक्ति का व्याप बढ़ा सकते हैं। परंतु छः फुट तो प्रत्येक की शक्ति फैली हुई होती है। इसलिए इस शक्ति के स्पर्श से बचना।

चांद और सितारों से भरे आसमान को पहले खुले नेत्र से देखते रहो २४ मिनट के दर्शन के बाद धीरे-धीरे उस हल्के से अंधकार, प्रकाश और शीतलता में विलीन होते जाओ। २४ मिनट का दर्शन आपको सहज ही विलीन होने में मदद करेगा।

धीरे-धीरे बाहर का आकाश और आपके भीतर का आकाश एकता का अनुभव करने लगेगा। यह अनुभव देह या

इन्द्रियाँ नहीं करेंगी। परंतु आपकी चेतना करेगी। चांद सितारों का प्रकाश आपके भीतर के प्रकाश के साथ तदाकार होने लगेगा। धीरे धीरे आप खो जाएंगे, बचेगा केवल प्रकाश, विशालता और विराटता; कोई वृहद् शक्ति जो पूरे ब्रह्मांड को घेर रही है। उसके साथ विलीन होकर आप तद्रूप हो जाएंगे। तब केवल उस वृहदता की उपस्थिति ही रहेगी। बाकी सबकुछ गिर पड़ेगा। वही परम प्रकाश की शक्ति है। आपका हृदय आत्मप्रकाश के अनुभव से भर जाएगा। पूर्ण तृप्ति का अनुभव होगा। अब कोई चाह नहीं, कोई आह नहीं। कितने दिव्य होते हैं ये क्षण! उतरो आकाश ध्यान में और अनुभव कर लो अपने महाआकाश का।

धरणा - १२

सागर ध्वनि श्रवण ध्यान

प्रिय साधको!

मैं बार बार कहती हूँ कि ध्यान विधियाँ देह, इन्द्रियाँ और सुख के विरोध में नहीं हैं परंतु उनके सम्यक उपयोग के लिए हैं। विश्व की कोई धार्मिक या आध्यात्मिक विधि जीवन से विपरीत या विरोध में नहीं है। किसीने मनगढ़ंत अर्थ लगाकर निजि स्वार्थ के संदर्भ में या अज्ञान वश धर्म की कुछ बातों को विकृत कर दिया हो तो ये अलग बात है।

ध्यान की कुछ विधियाँ करण ध्यान के नाम से प्रचलित हैं। करण का अर्थ होता है, इन्द्रियों द्वारा बनी हुई योग मुद्राएं। “विज्ञानभैरव तंत्र” में इसकी सिर्फ एक ही विधि है। परंतु बहुत सारी विधियों में इन्द्रियों का विविध रूप से अर्थात् इन्द्रियों को खुली रखकर या बंद करके अथवा सक्रिय या निष्क्रिय सहयोग लिया जाता है। सत्य का अनुभव तो परम चेतना ही कराती है परंतु इन्द्रियों का उचित उपयोग सहायता दे सकता है। ध्यान मार्ग में निंदा नहीं स्वीकार भाव है, पलायन नहीं परंतु केन्द्र में समझ है।

ध्यान की कुछ विधियों में स्पर्शेन्द्रिय (चमड़ी) साधन या माध्यम बनती है। तो कुछ विधियों में नेत्र, कुछ में नासिका, तो कुछ में श्रवणेन्द्रिय।

ध्वनि के हजारों हजारों प्रकार हैं। विविध ध्वनियों के विविध प्रभाव हैं। प्रेम की ध्वनियाँ अलग होती हैं और हिंसा या क्रोध की ध्वनियों की तरंगें अलग। यह बड़ी सूक्ष्म बात है। साधारण जन को थोड़ा बहुत पता चलता है। परंतु उनमें से कुछ खास ध्वनियों का आध्यात्मिक उत्थान में कैसे उपयोग किया जाय इस बात का बोध नहीं है। कुछ खास ध्वनियाँ मनुष्य के हकारात्मक रसायनों के स्त्राव को बढ़ाने में मदद करती हैं। उसकी हकारात्मकता काम करती है, अध्यात्म के प्रति प्रेरित करती है। देह के ज़हरीले रसायनों को नष्ट कर देती है। कभी कभी जो कार्य मनोविज्ञान के डॉक्टर या दवाईयाँ नहीं कर सकती हैं ऐसे कठिन कार्य और असाध्य स्थितियाँ कुदरत के संग में सहज साध्य बन जाती हैं।

आपको पता है? अच्छे अच्छे डॉक्टर कभी कभी कोई पेशन्ट को एडवाइस करते हैं कि हिल स्टेशन पर चले जाओ। ऐसा क्यों? क्योंकि कुदरत सबसे बड़ा किमियागर है, चारागर हैं। वह बिना मांगे स्वास्थ्य देता है। सिर्फ उसके संग हो लो। वह आप पर आशीर्वाद बरसा देगा।

मैंने ध्यान विधियों में कुदरत और मानव मन से जुड़ी हुई विधियों पर बहुत जोर दिया है। क्योंकि मानव जाति के पूरे इतिहास में मनुष्य कुदरत से अगर सबसे ज्यादा दूर गया है तो अंतिम २५ वर्षों में। टी.वी और अन्य आकर्षण उसके समय को खा गए हैं। खैर! फिर से लौट आओ कुदरत की ओर। कुदरत के सानिध्य में रहना ही स्वयं में एक आध्यात्मिक कार्य है,

उत्तम धर्म है, सच्ची धार्मिकता है और कुदरत से विपरीत जाना अधार्मिकता है।

मैं कहती हूँ कि आपकी इन्द्रियों को स्थूल बातों से बचाकर कुदरत के प्रति संवेदनशील बनाओ। कुदरत आपको अपार प्रेम करती है। आप उससे वफादार रहो। वह आपको बहुत कुछ देती है। आप उसे केवल आपका समय और लक्ष्य दो। उसे मौका दो आपका हित करने का।

अब समझो “सागर ध्वनि प्रवेश भाव ध्यान” को। चले जाओ समुद्र के तट पर, ढूँढ़ लो समय, न मिले तो चुरा लो। लेकिन समुद्र तट पर जरूर जाओ। वहाँ करो ध्यान शिबिर का आयोजन। आध्यात्मिक मित्रों के संग निकल पड़ो। आओ सागर के निकट। उसकी भीनी भीनी रेत आपके लिए गद्दी बिछाए प्रतीक्षा कर रही है। आप भी थोड़ा सहेलाओ उस रेत को – दुनियादारी के विचारों को झाड़ दो। समुद्र दर्शन होते ही थकान दूर हो जाती है। ऐसा अनुभव किया है कभी? अब करना। फिर के करना। समुद्र दर्शन से ज्यादा स्थिरता समुद्र ध्वनि के श्रवण से आती है। क्योंकि दर्शन बेशक सुंदर है, विराट है परंतु कभी कभी चेतना “स्व” में स्थित होने के बजाए, बनती बिखरती विविध आकृतियाँ धारण करती मौजों में ही अटक जाता है। कभी कभी समुद्र में स्नान करते हुए पर्यटक या तैरती स्टीमर, नौका या मछवारे भी मन को इधर उधर ले जाते हैं।

परंतु मैंने बराबर अनुभव किया है, अनेक बार अनुभव किया है कि सागर में से उठती ध्वनि स्वास लय में होती है, लयबद्ध होती है। बड़ी गहन और अद्भुत होती है। वे निःशब्द ध्वनियाँ, मानव सर्जित वर्णमाला के पार की ध्वनियाँ अर्थात् अवर्णनीय ध्वनियाँ हमारे भीतर के अवर्णनीय तत्व के साथ धीरे धीरे घुलमिल जाती हैं।

सागर तट पर पलकों को झुकाकर शांति से सुस्वासन में मस्ती से बैठकर अथवा भीगी भीगी शीतल-कोमल रेत में लेटकर आँखें मूंदकर सुनते रहो सामुद्रिक संगीत को। अर्थ के पार की उस ध्वनि को। डूब जाओ उसकी लय में। आपको थोड़ी ही देर में अहसास होने लगेगा कि ये तो आपका ही स्वरूप है। आपके भीतर भी ऐसा ही कुछ चल रहा है और यह सत्यानुभव है, भ्रम नहीं।

एक अर्थ में मनुष्य देह की साढ़े तीन करोड़ नाड़ियों में बहता हुआ रक्त एक ऊर्जा का महासागर ही है। देह के भीतर बहते हुए रक्त तंत्र की भी एक स्वास ध्वनि है, लय है, एक संगीत पूर्णता है। फर्क इतना है कि परमात्माने मनुष्य की शांति का खयाल करके उस ध्वनि को “म्यूट” कर दिया। बहुत सूक्ष्म कर दिया। इतना सूक्ष्म कि एक के रक्त के अभिसरण की ध्वनि दूसरा मनुष्य न सुन सके। कितनी शांति प्रदान की है परमात्मा ने! जरा सोचो! और मनुष्य ने अशांति के कितने और कैसे कैसे रास्ते ढूँढ़ लिए।

अब पुनः शांति के लिए एक ही उपाय है और ये है ध्यान। मैं आपको अनेक विधियाँ दूंगी। जहाँ आप सुकून पा लो, वहाँ स्थिर हो जाओ। इसलिए तो शास्त्र ने, तंत्र ने और भक्ति मार्ग ने भी विविध मार्ग प्रदर्शित किए हैं। वेदव्यास की नवधाभक्ति की अवधारणा क्या सिखाती है – श्रवण से, कीर्तन से, स्मरण से, चरणसेवा से, अर्चन से, वंदन से, दास्यभाव से, दोस्ती से या आत्मनिवेदन से... आपको जो अनुकूल हो उस मार्ग से आप उसको पा लो। यहाँ प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से समान चिंतन ही काम कर रहा है।

मैं भी कहती हूँ कि इन्द्रियों से, नृत्य से, शरीर से, प्रेम से, मन से, बुद्धि से और अहंकार को विलीन करके और स्वयं को जैसा है वैसा स्वीकार करके स्वयं को खोलकर रख दें।

अस्तित्व के सामने स्वीकार कर लो वास्तविकता का। छोड़ दो सारा दंभ, धार्मिक दबाव; जो मनुष्य को बदल नहीं पाता है मात्र दंभी बनाता है। छोड़ दो सारा दंभ। धर्मों के नियम ऊपर उठने के लिए हैं, दबने के लिए नहीं। सत्य को पाने के लिए हैं, असत्य का पोषण करने के लिए नहीं। आप अगर अपने धर्म संप्रदाय से दबे हुए हैं, डरे हुए हैं या कोई सही रूप से धर्म

को समझाने वाला नहीं है तो आ जाओ ध्यान मार्ग में लोगों की चिंता छोड़ो। सत्य तो सत्य है। वह कहीं से भी मिले, उसका स्वीकार कर लो।

विश्व के सभी धर्म ध्यान के पक्ष में हैं। रहना ही पड़ेगा, और कोई उपाय ही नहीं है। ध्यान एकमात्र पुरातन और नूतन, प्रथम और अंतिम उपाय है, मनुष्य को जगाने का। और उसकी अनेकानेक विधियाँ हैं। कोई न कोई तो आपके लिए अवश्य है। ये केवल श्रद्धा या अंधश्रद्धा का मार्ग नहीं है। ये स्वानुभव का अवसर है, इसे मत गंवाओ। जितनी स्वतंत्रता आपको ध्यान मार्ग दे सकता है उतनी और कोई धार्मिक शाखा प्रशाखाएं नहीं दे सकती।

स्वैर! तो मैं कहती हूँ कि आपके भीतर भी एक महाप्रवाह ध्वनित हो रहा है। वह भी जल तत्व से और ऊर्जा से भरपूर है। सागर तट पर उसकी लहरों से उत्पन्न ध्वनि का श्रवण किसी कथा श्रवण से कम नहीं समझना। बल्कि ज्यादा उत्तम है क्योंकि वह ध्वन्यात्मकता आपको वाया मीडिया नहीं। परंतु सीधा ही “स्व” के साथ जोड़ देती है। कोई दान-दक्षिणा की बात नहीं। कोई आरती प्रसाद की परंपरा नहीं। कोई पात्रों या रसों का आरोह अवरोह नहीं। सीधा अनुसंधान। इतना सहज और सरल मार्ग और कौन सा हो सकता है? सागर की ध्वनि आपके भीतर बहते हुए परमात्मा की शक्ति के महाप्रवाह का बहुत जल्दी ही साक्षात्कार करा देती है। उस ध्वनि का श्रवण करते करते आप बिना किसी श्रवणेन्द्रिय के भीतर के अनाहतनाद को सुनने लगेंगे।

धीरे धीरे भीतर और बाहर दोनों ध्वनियों से एक वर्तुल बन जाएगा। आप और सागर भिन्न नहीं रहेंगे। सागर गर्जगा आपके भीतर, आप ध्वनित होने लगेंगे सागर की गहराइयों में। द्वैतभाव गिर पड़ेगा। सहसा उस ध्वनि वर्तुल में समग्र ब्रह्मांड के साथ आपकी अद्वैतता स्थापित हो जाएगी। यही प्रबुद्धत्व में प्रवेश का क्षण होगा। यही परमानंद की घड़ी है। आप ब्रह्मांड का एक हिस्सा होते हुए भी ब्रह्मांड रूप बन जाएंगे। अचानक बोध जग जाएगा कि सागर की लहरों में जो ध्वनित हो रहा है वही मुझ में भी हो रहा है। अर्थात् भीतर और बाहर केवल आकृति प्रकृति का फर्क है। तत्व में कोई भेद नहीं। इस क्षण में रोम रोम पुकारने लगता है “अहं ब्रह्मास्मि”, “अहं ब्रह्मास्मि”, “अहं विश्व”, “अहं विश्व”। मैं ही ब्रह्म हूँ, मैं ही विश्व हूँ, मैं ही शिव हूँ, मैं ही शब्द हूँ और मैं ही शून्य और निःशब्द हूँ।

धरणा - १३

जल प्रपात दर्शन ध्यान

प्रिय साधको!

जहाँ कहीं भी जल प्रपात को, पानी के धोध को देखो तो तुरंत उसके निकट जाकर खो जाओ उस प्रवाह में। जल धोध भले छोटा हो या बड़ा अथवा पहाड़ियों से गिरता हुआ कोई झरना हो; ऐसा जल प्रपात या झरना कि, वह कहाँ से आ रहा है उसका पता न हो, जिसके उद्गमस्थान की किसीको खबर न हो ऐसे अन्जाने जलप्रपात के सानिध्य में ध्यान आरंभ कर दो। उसकी आवाज, छींटे, दर्शन और सानिध्य तथा अविरत गिरने की प्रक्रिया आपको थोड़ी ही देर में निर्विकल्पावस्था में ले जाएगी। दुन्यवी विचार छूट जाएंगे, मस्तिष्क शांत हो जाएगा, शरीर ज्यादा स्थिर हो जाएगा और आपकी सारी ऊर्जा अपने आप ध्यान करते-करते आपके केन्द्र की ओर मुड़ जाएगी। आपका अस्तित्व सहसा कहने लगेगा कि इस झरने के उद्गमस्थान को भले कोई नहीं जानता है परंतु इसका अर्थ ये नहीं है कि वह मूल स्रोत विहीन है। ऐसे ही सारे ब्रह्मांड में जो ऊर्जास्रोत बह रहे हैं वे तो छोटे हैं परंतु उन सारे ऊर्जास्रोतों का कोई परम उद्गम स्थान है, कोई परम सूत्र है जहाँ से सबकुछ

प्रगट होता है।

इस भाव के साथ ही ये परमसूत्रधार या महाचेतना के प्रति हृदय अहोभाव से भर जाएगा। और तत्काल उस महाउद्गम में साधक का समावेश हो जाएगा। यह क्षण महामुक्ति का होता है – यही है सत्यज्ञान – शिवावस्था का बोध।

प्रिय साधको!

एक अवस्था में दुनिया से पाए हुए उधार ज्ञान को बीच में मत आने देना – ज्ञान की कुछ बातें ऐसी हैं जो विज्ञान से नहीं जानी जा सकती। विज्ञान को ज्ञान जान लेता है, परंतु विज्ञान ज्ञान को जान ही ले ऐसा जरूरी नहीं है।

ध्यानपूर्ण अवस्था में जो उपलब्धियाँ घटती हैं वह शब्द वाणी और क्रिया के पार होती हैं। विज्ञान सब बात को पदार्थ की प्रक्रिया द्वारा जानता है परंतु ज्ञान या ध्यान अक्रिया में प्रवेश के द्वारा पा लेता है रहस्य को। वहाँ पदार्थ का नितांत अभाव होता है। केवल भाव और चेतना की समझ से कुछ नूतन और दिव्य घटित होता है।

झरने के धरती पर गिरने की धारणा में न्यूटन का सिद्धांत काम का नहीं है। वहाँ केवल महाउद्गम की धारणा से ही भीतर आनंद उत्सव होने लगेगा।

गुरुत्वाकर्षण का नियम है कि हर भारी चीज़ ऊपर से नीचे की ओर आती है। आकाश से पृथ्वी की ओर आती है, इसे न्यूटन ने ग्रेवीटेशन का सिद्धांत कहा। ये सिद्धांत भौतिक विज्ञान का है। न्यूटन की समझ भौतिकवाद तक ही सीमित थी। उसकी क्षमता उतनी ही होगी। उसे यह विचार नहीं आया होगा कि आकाश से गिरती हुई स्थूल चीज़ पृथ्वी की ओर ही आती है वैसे ही पृथ्वी की कोई ऐसी सूक्ष्म चीज़ भी हो सकती है जिसकी गति ऊपर की ओर हो। आकाश की ओर हो। क्योंकि वह उसका भाग्य नहीं था। उसका चिंतन केवल भौतिक था।

परंतु हमारे ऋषिओं ने जीवन की घटनाओं के तीन विभाग किये हैं। आदि दैहिक, आदि दैविक और आध्यात्मिक। आध्यात्मिक घटनाएं सबसे ऊपर हैं। भारत ने यह विचार लाखों वर्ष पहले दिया। यह कुछ प्रबुद्ध पुरुषों ने आध्यात्मिक अनुभूति के बाद ही कहा था। आधिदैहिक अर्थात् भौतिकता, पदार्थ या देह के संदर्भ में जो कुछ भी है, ये सब। और आध्यात्मिक अर्थात् मनुष्य की सूक्ष्म चेतना अर्थात् आत्मा के संदर्भ में जो कुछ भी है ये। आधिदैहिक का संबंध सीधा पृथ्वी के साथ है और आध्यात्मिक बातों का संदर्भ सीधा अज्ञात, रहस्यमय, अदृष्ट, सूक्ष्म और विराट या आकाश के साथ है।

न्यूटन के बाद कुछ लोगो ने चिंतन किया कि पृथ्वी से ऊपर की ओर आकर्षित होने वाली कुछ चीजें भी अस्तित्व में हो सकती हैं। और बाद में यह सिद्धांत “प्रिंसिपल और लेविटेशन” नाम से प्रसिद्ध हुआ। बहुत कम लोग इसके बारे में जानते हैं। परंतु मैं कहूंगी कि यह जानने से ज्यादा अनुभव करने योग्य बात है। यहा साधना का विषय है। साधना अंतरचेतना से संलग्न है, मस्तिष्क से नहीं।

हर व्यक्ति को एक सामान्य सत्य को समझ लेना चाहिए कि हर चीज़ ऊपर से नीचे आती है अर्थात् ऊपर से नीचे की ओर क्यों फेंक दिया जाता है? हर चीज़ को पृथ्वी क्यों खींचती है? आपने कभी सोचा है कि लोहचुंबक लोहे को आकर्षित कर सकता है सोने को नहीं, अर्थात् पृथ्वी उसी चीज को अपनी ओर खींचती है जिसका समान गुणधर्म हो – स्थूलता और जड़ता ये पृथ्वी के दो प्रमुख गुण हैं। जब वस्तु में से स्थूलता और जड़ता नहीं रहती या हट जाती है तो उसे पृथ्वी नहीं खींच सकती। भौतिक विज्ञान की यह बात अध्यात्म को समझने के लिए उपयोगी होगी।

इसे और आध्यात्मिक बारीकी से समझने की कोशिश करें। पूर्ण रूप से चेतना के स्तर पर समझने की कोशिश करें। दो प्रकार के भारीपन होते हैं। एक बाहर का दूसरा भीतर का। बाहर का भारीपन इतना खतरनाक नहीं है जितना भीतर का। भीतर के भारीपन का नाम है – अहंकार, मिथ्याभिमान, रूपाभिमान, पदाभिमान, देहाभिमान, धनाभिमान। ये केवल

स्थूल चीजों का सूक्ष्म के द्वारा अर्थात् मन के द्वारा पकड़ी हुई मानसिक धारणा ही है। सत्य कुछ भी नहीं है परंतु असत्य और अज्ञान का भार बहुत ज्यादा होता है। इन दोनों से मनुष्य मन दूषित होता है और वह अज्ञानवश जो कुछ भी बंधन हों ऐसी प्रवृत्तियाँ करता है। उसे शास्त्र ने पाप कहा है। संतो ने अपनी वाणी में पाप को भूमि से भारी और ज्ञान को जल से पतला कहा है।

कोई चीज़ या आपका शरीर पृथ्वी की गुरुत्वाकर्षण शक्ति से ऊपर से नीचे गिर जाए तो इतना खतरनाक नहीं जितना मन का गिरना है। मानसिक पतन ज्यादा नुकसानकर्ता है, घातक है और मानसिक स्वस्थता या चिंतन की उर्ध्वगति ज्यादा कल्याणकारी है। अधःपतन और उर्ध्वगमन का मूल मनुष्य मन है, देह नहीं। देह और इन्द्रियाँ तो बेचारी मन के पीछे-पीछे विवश होकर दास की तरह व्यवहार करती हैं।

ध्यान में प्रवेश होने से शरीरधारी रहने के बावजूद भी आपको पंख आ जाएंगे। आप उड़ पाओगे। वे पंख होंगे समझ के, जागृति के, विशुद्धता के, अहंशून्यता के। एक बार बुद्ध के पांचसौ शिष्य एक साथ ध्यान में बैठे थे। एक शिष्य कक्ष के बाहर खड़ा था। एक राजा वहाँ पहुँचा और उसने बुद्ध के शिष्य से कहा कि मुझे ध्यानस्थ भिरव्बुओं का दर्शन करना है। राजा साधक कक्षा का होगा, शिष्य ने प्रवेश दिया। सबको देखने के बावजूद भी राजा ने शिष्य को पूछा कि ये सब कहाँ गए? शिष्य ने कहा, “उड़ गए”। अद्भुत प्रश्न, अद्भुत जवाब। ध्यान से मनुष्य की चेतना पार्थिव आकर्षणों से ऊपर उठकर अंतरिक्ष में उड़ने लगती है।

जल प्रवाह ऊपर से नीचे आता है। फल वृक्ष के ऊपर से नीचे आते हैं, हृदय से रक्त और मस्तिष्क के भीतर के चेतातंत्र की कोषिकाएं ऊपर से नीचे आती हैं। सितारे ऊपर से नीचे आते हैं। इन सारी रहस्यपूर्ण घटनाओं में पृथ्वी का गुरुत्वाकर्षण भले काम कर रहा है परंतु सारी महत्वपूर्ण चीजें ऊपर क्यों हैं? चांद, सूरज, बादल, सितारे, हवा सब ऊपर क्यों? यहाँ पृथ्वी से हल्का क्या? भारी क्या? इसकी बात मुझे नहीं करनी है। मेरा तात्पर्य ये है कि हर सुंदरता ऊपर की ओर है। उपरांत बहुत सारी घटनाओं का आधार भले पृथ्वी हो परंतु जलचरों को या पाताल की कुछ जातियों के सिवाय अधिकतर जीवों का, अरे पेड़-पौधे, बेलि आदि का विकास ऊपर की ओर क्यों है? हर चीज़ आकाश की ओर बढ़ रही है। ऐसा क्यों? क्यों? क्यों? बार-बार केन्द्र के प्रति मुड़कर चिंतन करने से अस्तित्व जवाब देता है कि जीव प्राणी मात्र का आकर्षण भले पृथ्वी का है परंतु आकांक्षा ऊपर उठने की है। सभी आकर्षणों का परम आकर्षण बिंदु सबके ऊपर ही है। यहाँ मैं केवल आध्यात्मिक स्तर पर ही बात करना चाहूँगी। थोड़ी देर के लिए वैज्ञानिक रेडीमेड सिद्धांतों को छोड़ो और हो जाओ संपूर्ण आत्मलक्षी।

चेतना का स्वभाव है कि वह ऊपर की ओर ही जाएगी। मिट्टी का स्वभाव है कि वह नीचे की ओर कुछ न कुछ ढूँढ़ती रहेगी। इसीलिए प्रेम आत्मा को स्वीचता है, वासना शरीर को। अहं, वासना, लोभ ये सब इतने सूक्ष्म हैं कि उसे गिरते हुए आप नहीं देख पाओगे। फिर भी ये पृथिवता की ओर घसिटे जाते हैं। वे मनुष्य को सूक्ष्म रूप से गिरा देते हैं। प्रेम, ध्यान, सेवा, करुणा ये आकाश की ओर ले जाते हैं। जैसे स्थूल पदार्थों में सुंदर और असुंदर ऐसे दो प्रकार हैं, वैसे ही सूक्ष्म जगत में भी सुंदर और असुंदर प्रकार हैं।

कुछ सुंदर चीजें गिरकर भी सुंदर लगती हैं। पृथ्वी पर गिरने में ही उसकी सार्थकता है। ऐसे सौंदर्य में से एक है जल प्रपात। बारिश, जल प्रपात, नदियाँ ये सब अपवाद हैं – यह अधःपतन नहीं परंतु एक अर्थ में मूलस्रोत में मिलने के लिए पुनर्गमन की प्रक्रिया है। गंगा या किसी महापुरुष के पृथ्वी पर के आगमन को अवतरण कहते हैं; अधःपतन नहीं।

प्रिय साधको!

मैं तो एक अलग दृष्टि से उर्ध्वगमन और अधोगमन की घटना को लेती हूँ। इसे ईश्वरीय संगीत का आरोह-अवरोह

समझती हूँ। आरोह-अवरोह के बिना संगीत अधूरा है। स्वर केवल चढ़ते जाते हों परंतु पुनः मध्य या मंद्र सप्तक में नहीं आते तो उसका सौंदर्य स्वप्न हो जाता है। तबले के बोल में सम से सम का आवर्तन पूरा होता है तभी ताल पूर्ण और सुंदर लगता है। चक्र की गति ऊपर-नीचे होने से ही रथ का वहन होता है। ऐसे ही विश्वरथ का संचालन करने वाला अदृश्य परमात्मा प्रत्येक के चढ़ाव उतार से विश्व का सौंदर्य बनाए रखता है। इसे हम “सायन्स ऑफ नेचर” कह सकते हैं। इस सायकल में से जो बाहर निकल जाता है उसकी चेतना फिर से अदृष्ट परमात्मा रूप बन जाती है। उस सीमा तक आपको पहुंचा सकता है, ध्यान!

कुछ चर्चाएं जल प्रपात प्रवेश भाव ध्यान से हटकर भी हुई हैं परंतु ये बातें जरूरी थीं। कभी कभी रेडीमेड ज्ञान सिद्धांत आपके लिए द्वार बंद कर देता है। पूर्व धारणाएं आपको विकसित नहीं होने देती इसलिए विस्तार करना पड़ा। धारणाएं तोड़नी पड़ीं। कुतर्क से या ज्ञान के भ्रम से आप सही ज्ञान से दूर न रह जाओ इसलिए तर्क की कसौटी पर कुछ बातों को चढ़ाया। परंतु सत्य यह है कि स्वयं उतरो ध्यान में, स्वयं अनुभव करो उस महाउदगम स्थान का, जहाँ से आप आए हो.....

धरणा - १४

नदी सागर संगम दर्शन भाव ध्यान

प्रिय साधको!

नदी और सागर में क्या फर्क है? एक अर्थ में कुछ भी नहीं। दूसरे अर्थ में बहुत बड़ा फर्क है। मूल स्वभाव में कोई फर्क नहीं है। फिर भी कुछ गुणधर्म अलग अलग हैं। जैसा कि वामन और विराट में, दोनों के स्वाद में, दोनों के बहाव में।

नदी का अंतिम गंतव्य स्थान समुद्र ही है। वहाँ पहुंचने से ही नदी का नदीत्व पूर्ण होता है। जब कोई भी व्यक्ति पूर्णता को प्राप्त कर लेता है तब अनिवार्य रूप से वह रूपांतरित हो जाता है। पूर्णरूपांतरण के बिना पूर्णत्व संभव नहीं है। अंश अंशी में मिल जाने के बाद पुनः अंश रूप से भिन्न नहीं हो सकता। नाशवंत का अविनाशी से मिलने के बाद पुनः नाशवंत रहने का कोई उपाय नहीं है। परंतु यह समझ ध्यान से ही विकसित होती है क्योंकि ध्यान यह सत्य का अनुभव कराता है।

आपने देखा है कभी वह स्थान जहाँ नदी सागर में मिलती है? साधारण जन को तो यह दृश्य साधारण सा ही लगता है। कुछ लोगों के लिए वह भूगोल की इन्फोर्मेशन है। धार्मिक लोगों के लिए एक पावन स्थान है। प्रकृति प्रेमियों के लिए एक प्राकृतिक घटना का दर्शन है परंतु आध्यात्मिक दृष्टि से वह स्थान, वह मिलन, वह प्रवाह बहुत ही महत्वपूर्ण है।

आपको पता ही होगा कि नदी के तट पर अनेक संस्कृतियाँ पनपी हैं। गंगा, यमुना, सिंधु, चंबल और चिनाब के तटों ने इतिहास रचा है। मानव जाति नदी के तट पर विकसित होती है। हरियाली क्रांति करती हैं, कृषि और पशुपालन सफल होता है। नदी अनेक छोटे बड़े गाँवों और नगरों से बहती हुई बहुतों की प्यास बुझाती हुई बहती जाती है... बहती जाती है... वह सबकी प्यास बुझाती है परंतु स्वयं की प्यास बुझाने को दौड़ती जाती है... दौड़ती जाती है...। कितने मोड़ लेती है अपने रास्ते में, क्या गुजरता है उसके साथ! कैसे कैसे ढंग से होता है उसका इस्तेमाल! कितनी चट्टानें, खड़क, कूड़ा, कर्कट, गंदगी आती है उसके रास्ते में। माया और जगत जैसे दोनों तट उसे बाधे रखते हैं। कभी लांघ देती है किनारों को भी वर्षा में, कभी कभार स्वतंत्रता की घोषणा करती हुई स्वच्छंद लोकमाता रौद्ररूप भी ले लेती है। फिर भी सबको शुद्धता प्रदान करती करती खुद में दुनियाँ की अशुद्धियों को झेलती हुई अस्खलित रूप से बहती हुई अविरत दौड़ती रहती है। तब तक जब तक वह अपने प्रीतम तक न पहुंचे।

आप जरा सोचना ! अति पुरुषार्थ और प्रतीक्षा के बाद आप जब प्रियतम से मिलते हैं तब क्या करते हैं ? और नदी ! कोई बात नहीं, कोई संवाद नहीं, अतीत के संघर्ष की कोई चर्चा नहीं, भविष्य का कोई आयोजन नहीं, कोई हंगामा किए बिना चुपचाप मिल जाती है सागर में और सागर भी एक ही लहर में दे देता है उसे अपना स्वरूप । द्वैत मिट गया । अद्वैत रह गया । नदी पूर्ण रूप से हो गई समर्पित कभी भिन्न न होने के फैसले के साथ । खो दिया स्वयं को सागर में । प्रिय साधकों !

पता है आपको कि मैं इतना सब क्यों कह रही हूँ ? मैं एक कवयित्री या सर्जक हूँ इसलिए नहीं परंतु इस घटना में अर्थात् नदी का सागर में समा जाने की घटना में आध्यात्मिक मनुष्य की कथा छिपी है । राम, कृष्ण, शिव या शक्ति की कथा तो सब करते हैं, मुझे यहाँ किसी भी अतिशयोक्ति के बिना आध्यात्मिक मनुष्य की कथा कहनी है । नदी आध्यात्मिक चित्त और प्रेम, सेवा, करुणा तथा परोपकार वृत्ति का प्रतीक है ।

छोटे मोटे झरने का कोई स्वास ध्येय नहीं होता, पर्वत से गिरते हैं और थोड़ा बहुत बहकर सूख जाते हैं । चंद लम्हों की जिंदगी । उसके पास कोई महान आशा या अमरत्व का भाव ही नहीं है । तो कैसे जाएंगे सागर की ओर । ये साधारण चित्त का प्रतीक है । दो घड़ी गिर लिया, नाच लिया झूम लिया, किसी ने देख लिया तो इस्तेमाल कर लिया बाकी सूख गए ।

गटर के पानी का कोई मूल्य नहीं है । गटर का गन्तव्य स्थान गटर ही है । उसे गढ़े में डूब मरना है । ज्यादा से ज्यादा वह मच्छर पैदा कर सकता है । दुर्गंध फैला सकता है । गंदगी फैला सकता है । इससे आगे कुछ भी नहीं । उसके पास जीवनदायक गुण एक भी नहीं है । आदमी ने गोबर गैस प्लांट में उसका उपयोग कर लिया या सब्जी भाजी पका ली, इसमें उसकी चालाकी है, वह नाजार्इज़ ईंधन और नाजार्इज़ मंडी है, स्वास्थ्य के लिए हानिकारक है ।

तीसरे प्रकार के लोग दुनियां में गटर के पानी जैसे हैं । उनके पास परम ध्येय तो नहीं परंतु क्षणिक आनंद भी नहीं है । वे केवल गंदगी फैला सकते हैं । ऐसे लोगों के लिए शास्त्र दुष्ट, अधम, पापी, नीच, शठ जैसे शब्दों का प्रयोग करते हैं । परंतु सभी शब्द छोटे पड़ जाते हैं । ऐसे लोग दुनियां को कभी भी कुछ भी सुंदर या स्तुत्य नहीं दे सकते हैं । पैदा भी करते हैं तो चांचड़, मच्छर । उन्हें ज्ञान, ध्यान, भक्ति, सत्संग, अध्यात्म कुछ भी अच्छा नहीं लगता । गटर गटर में ही मिलती है । वे उनका महौल ढूँढ लेते हैं । ऐसे लोगों से सावधान ।

मैंने विविध चित्त को समझने के लिए कुछ उदाहरण दिए । उदाहरण से कभी कभी चीजें आसान बन जाती हैं । चमत्कार घट जाता है ।

ध्यान प्रथम प्रकार के चित्त वाले लोगों के लिए है क्योंकि ये नदी जैसे हैं । डबरे के पानी जैसे नहीं । वे ज्यादा जीवंत हैं । सक्रिय हैं, उदार हैं, परोपकारी हैं, प्रेमपूर्ण हैं, खोजी हैं, संघर्ष कर सकते हैं । मनुष्य स्वभाव के वश होकर कभी मानवीय कमज़ोरियों का शिकार भी बन जाते हैं । कभी क्रोधित भी होते हैं परंतु धर्महीन नहीं हैं । कभी कभी इधर उधर मुड़ जाते हैं, ठोकर लग सकती है परंतु अजाग्रत नहीं हैं – बेहोश नहीं हैं, उसे पहचाना है परम प्रीतम तक । अदृश्य होना है उसमें, हमेशा हमेशा के लिए । बनना है विराट रूप । खो देनी है अपनी दुन्यवी पहचान हमेशा के लिए, मिट जाना है, फना हो जाना है, मुक्त हो जाना है हर बंधन से । और ऐसे लोग जब आध्यात्मिक संघर्ष करते हैं तब साधना फलित होती है ।

नदी का प्रतीक बहुत प्यारा है नदी की यात्रा और उद्देश्य साधक को बहुत कुछ समझा देते हैं । नदी के पिता पार्थिव हैं । प्रियतम प्रवाही, जीवंत, रत्नागर, विराट, अंतहीन, अपार, गूढ़, गहन और गंभीर ।

नदी क्या सिखाती है हमें ? क्या बोध कराती है हमें ? दुन्यवी माता पिता तो पार्थिव ही होंगे, मिट्टी के पुतले । पार्थिव शब्द पृथ्वी से आया है । पृथ्वी अधिकतर मिट्टी है । ज्यादा कठोर मिट्टी पत्थर बन जाती है । ऊंचे पत्थरों का समूह पर्वत बनता है ।

जिसके नीचे फलद्रुप मिट्टी थी और उसके नीचे जलप्रवाह था। वह प्रवाह पत्थर के संग रहकर भी ज्यादा समय तक नहीं रह पाया क्योंकि असल स्वभाव पत्थर से भिन्न था। उस जलप्रवाह ने पत्थर के द्वारा जन्म तो ले लिया परंतु प्रकृति भेद के कारण वह उसके संग या आसपास नहीं रह पाया। वही नदी बनकर चल पड़ा अपने मूल रूप की खोज में। परम प्रेम की खोज में। और सत्य है, समान गुणधर्म में ही कोई पिघल सकता है। यहाँ केवल पदार्थ की बात नहीं, चेतना की बात है। उपरांत, अपने से श्रेष्ठ और क्षमतावान को समर्पित होने में गौरव का अनुभव होता है। अपने से हीन को समर्पित होने से बड़ी वेदना दुनिया में क्या हो सकती है ?

स्वैर ! संस्कारवश या संयोग से आध्यात्मिक मनुष्य के माँ-बाप भले कोई भी हों परंतु स्वभाव की भिन्नता की वजह से ऐसे साधक को नदी की भांति दुन्यवी घर को या परिवार को छोड़ना ही पड़ता है। बिल्कुल विपरीत गुणों के साथ समाधान कर लेने से तो संघर्ष करना ज्यादा अच्छा है। ऐसा समझकर ऐसा साधक होश के साथ निकल जाता है पत्थर दिल दुनियां से दूर। उसे इतना पता चल जाता है कि “इन लोगों के साथ मेरा निर्वाह नहीं हो सकता”, परंतु शाश्वत निर्वाह कहाँ होगा उसका पता नहीं। वह निकल पड़ता है नदी की भांति। अपने सस्वभाव के कारण वह जहाँ जाता है वहाँ सुख, शांति, समृद्धि बाँटता रहता है। कभी लड़खड़ाता है, कभी मुड़ता है कभी धँसता है, कभी गति मंद हो जाती है परंतु खोज नहीं छोड़ता। कहीं न कहीं से उसे समुद्र का कोई न कोई निशान और पता मिलता रहता है। दूसरी ओर समुद्र भी उसे पुकारता रहता है। वह विराट भी उसकी प्रतीक्षा करता है। परंतु संघर्ष करने देता है। सच्चा साधक सही नदी की तरह कभी वापस नहीं लौटता। बढ़ता जाता है आगे और एक दिन अचानक उसे पता चल जाता है कि मेरी मंजिल मुझे मिल गई। वह कुछ समझे बूझे इसके पहले तो वह वामन अदृश्य हो जाता है विराट में।

प्रिय साधको !

अगर आप समझो तो एक छोटी सी ध्यान विधि समझाते समझाते बहुत कुछ कह दिया है। नदी के प्रतीक के द्वारा। अगर इतनी समझ के बाद “नदी सागर संगम प्रवेश भाव ध्यान” विधि में उतरेंगे तो नदी और सागर के संगम की प्रक्रिया देखते देखते खुली आंख से ध्यान के ज़रिए आप सारे दुन्यवी विचारों से सहज मुक्त होकर भीतर और बाहर से स्थिर हो जाओगे। और शीघ्र ही बोध जाग्रत होगा कि नदी का अंतिम गंतव्य स्थान जैसे महासागर है वैसे जीव का परम गंतव्य स्थान शिव है। और अंतर से उस आवाज के उठते ही आप अदृश्य होने लगेंगे उस शिव में, विराट में, सर्वव्यापी और सर्वरोम में। जो आपका मूल स्वभाव है। एक बार इस झलक को पाने के बाद आप कभी भी वहाँ से वापस नहीं आ पाओगे। वापस आना जरूरी भी नहीं है। घबराना मत उस मिलन से। ऋषि मुनि हजारों साल की तपश्चर्या के बाद भी जो अवस्था प्राप्त नहीं कर सके ऐसी अवस्था इस ध्यान विधि से बहुत जल्दी प्राप्त हो सकती है। देर मत करो, प्रमाद मत करो, डरपोक न बनो, घटने दो क्रांति।

धरणा - १५

स्वर्ग उड्डियन दृश्य प्रवेश ध्यान

प्रिय साधको !

पार्थिवता से ऊपर उठने की चाह को मैं अध्यात्म कहती हूँ। उसके लिए होशपूर्ण प्रयास को मैं आध्यात्मिक प्रयास कहती हूँ। पलायन में और उड़ान में बहुत फर्क है। दुनियाँ में जिसके मन में पार्थिवता से ऊपर उठने की चाह उठती है, वे लोग बड़े भाग्यवान हैं। और ऐसे भाग्यवानों के लिए है, ध्यान विधान। ऐसी चाह वाले साधकों के लिए ही मुझे यह ग्रंथ लिखना पड़ा

है।

आपको पता नहीं है, लेकिन प्रत्येक मनुष्य जड़त्व, जलत्व, पक्षित्व, पर्णत्व और पुष्पत्व के गुणों से भरा है। पार्थिवता के साथ दुनियाँ के साथ, चीजों, व्यक्तियों, वस्तुओं एवं वृत्तियों के साथ चिटके रहना या जकड़े रहना, ये हैं मनुष्य का जड़त्व। ये जड़त्व उसे हजारों हजारों योनियों में भटकाता है। मुक्ति का मार्ग उसके सामने खोल के रख दिया जाए तो भी उसका जड़त्व उसे उस मार्ग पर नहीं जाने देता। ये जड़त्व ही बंधन और मुक्ति का कारण है। जन्म और मृत्यु का कारण है। सुख और दुख का कारण है। राग और द्वेष का कारण है। जड़ चीज़ें उड़ नहीं सकतीं। उड़ना सोच तक नहीं सकतीं। उनका जड़त्व उन्हें ऊपर नहीं उठने देता। उस जड़त्व से मुक्त होने का एक ही मार्ग है कि आपकी चेतना आपके जड़त्व को ठीक ढंग से पहचान ले। और मुड़ जाए ध्यान की ओर।

सरसता, सरलता, सहजता और अविरत कुछ न कुछ करते रहने का भाव, यह जलत्व स्वभाव है।

प्रसन्नता, विकसित होने की भावना और अंत में निरासक्त भाव से सहजता से बंधन मुक्त हो जाने की कला में मनुष्य का पर्णत्व है।

सुवास फैलाना, सौन्दर्यपूर्ण होना, सौंदर्यप्रिय होना और विश्व के सौंदर्य को बढ़ाने के भाव में मनुष्य का पुष्पत्व सफल होता है।

उड़ने की चाह, उस चाह के लिए पुरुषार्थ करना, उस चाह को पूरा करने के लिए अपनी दिशा ढूँढ़ लेना। आकाश का पता लगा लेना और उड़ना। इसमें मनुष्य का पक्षित्व है।

मनुष्य में रहा हुआ पक्षित्व प्रतिपल मुक्ति की आकांक्षा करता रहता है। परंतु दुन्यवी लालसाएं उस आकांक्षा को बार बार दबा देती हैं। आप ही सोचो कितनी बार आया होगा आपको सब छोड़ छाड़ के चले जाने का विचार। यह पलायन में से नहीं आता है। आपका अंतरजगत प्रतिपल मुक्ति की आकांक्षा करता है। और बाहरी जगत उस आकांक्षा को रिश्ते, नाते, जिम्मेदारी, प्रेम आदि सुनहरे नामों से दबोच देता है। जो उस दबाव में से साहस करके छलांग लगा देता है, वह बुद्ध बन जाता है। अंतरजगत में से प्रतिपल मुक्ति की पुकार इसलिए उठती है क्योंकि वह आदि-अनादि से मुक्त ही है। उसका असल स्वभाव बंधन नहीं है। बंधन में से मुक्ति में नहीं जाना है, मुक्त को पुनः मुक्त होना है। बंधन तो उसके साथ एक अकस्मात है।

प्रिय साधको!

मैं फिर से एक बार आपको उड़ने का होसला देने के लिए यहाँ आई हूँ। आपके पास पंख हैं, उड़ने की तमन्ना भी है, खुला आसमान भी है, पुरुषार्थ करने की क्षमता भी है; अभाव है तो केवल जाग्रति और साहस का। मेरे शब्द आपका होसला बढ़ाएंगे और आपको जाग्रति प्रदान करेगा, ध्यान। ध्यान एक दूसरा कार्य भी करेगा, वह उड़ने के लिए द्वार खोल देगा। पिंजरा खुल जाएगा। मेरे दिए हुए होसले से पिंजरे में रहने का आदि हो गया हुआ पंछी उड़ने का साहस करेगा।

निकलो पिंजरे में से बाहर। जरा देखो, मुक्ति का आकाश आपको बुला रहा है। उस आकाश को दूर से देखने मात्र से आपके उड़ने की आस और बढ़ जाएगी। डरना मत, चिंता मत करना, घबराने की कोई जरूरत नहीं है। आपके जैसे अनेक पंछी वहाँ उड़ रहे हैं। अध्यात्म के आसमान में उड़ने वाले समान धर्मा पंछियों को मैं संघ कहती हूँ। बुद्ध का भी यही स्वप्न था। पिंजरे में रहने की जिसे आदत हो गई है या पिंजरा छोड़ने से जो डरते हैं, ऐसे पंछी इस संघ-समूह का आनंद नहीं ले सकते हैं।

सर्दियों की सुबह में या संध्या के वक्त आपने देखा है पक्षी समूह को आसमान में से उड़ते हुए गुजरना? उनका उड़ना आसमान में विविध चित्र बनाता है और रंग भर देता है। मनुष्य को पक्षी के पास से कुछ सीखना चाहिए। उन पक्षियों के झुंड के

उड़ने में कितनी एकरूपता, लय और समायोजन होता है। आदमी रस्ते पर चलते हुए अकस्मात कर देता है। वे बड़ी तादाद में होने पर भी अकस्मात नहीं करते। पक्षी के एक झुंड के साथ कभी भी नहीं टकराया पक्षी का दूसरा झुंड। आदमी अस्तित्व के लय को खंडित करता है, पक्षी कुदरत के संगीत को सुरीला बनाकर और सुंदर बनाते हैं।

एक दूसरी बात भी याद रहे। पक्षी की बात निकली ही है तो आप एक आत्मानुशासन के साथ समूह में उड़ना सीख लें, यह अनिवार्य है। एक पक्षी दूसरे के पंख पर कभी हावी नहीं होता, डबल सवारी केवल आदमी ही करता है। पक्षित्व में किसी को ढोना नहीं है। स्वयं को ऊपर उठाना है। दुनियाँ में दो प्रकार के लोग हैं। एक प्रकार को दूसरों को ढोने का स्वभाव हो गया है। दूसरा प्रकार अमीबा जैसे परोपजीवी हैं। वे हमेशा चाहते हैं कि उसका भार कोई दूसरा ढोता रहे। दोनों घातक हैं। निकल आओ उन स्थितियों में से बाहर।

मेरे पास आने वाले तीसरे प्रकार के ही हो सकते हैं। जो स्वयं उड़ना चाहते हैं। सहयोग एक बात है और शोषण दूसरी। शोषण कर्ता और शोषित दोनों ही अधार्मिक हैं। दुनियाँ में मंदिर मस्जिद में जाने वाले लोग पूजा-पाठ करने वाले लोग और भगवान की बातें करने वाले लोगों में अक्सर ऐसे ही देखे गए हैं। अध्यात्म चित्त न अपना शोषण होने देता है और ना ही किसीका शोषण करता है। वह ऊपर उठ जाता है इन दोनों स्थितियों से। इसे मैं उड़ान भरना कहूँगी। आपमें उड़ने की चाह उठे इतना ही काफी है। पंछी के बच्चे को माँ जैसे उड़ना सिखाती है वैसे उड़ना तो मैं आपको सिखा दूँगी, पंख आपके पास हैं परंतु आपको उन पंखों का विस्मरण हो गया है। आप उड़ना सीख लेंगे तब द्विज हो जाएंगे। द्विज का अर्थ है एक ही जन्म में जो दूसरी बार जन्म लेता है। ध्यान से आपका पुनर्जन्म हो जाएगा।

आपके जैसे अन्य आध्यात्मिक पंछी के समूह को आप यहाँ पाएंगे। उनसे भी आपको थोड़ी बहुत प्रेरणा मिल सकती है। ध्यानियों के समूह की हकारात्मक ऊर्जा कम से कम एक दूसरों को विक्षेप तो बिलकुल नहीं पहुंचाते। समाज में कोई किसी की मदद न करे तो कोई बात नहीं, कम से कम विक्षेप न पहुँचे तो भी दुनियाँ सुंदर बन जाएगी।

पक्षियों के उड़ते झुंड में सभी उड़ रहे हैं। उसमें से कुछ पंछी कहेंगे कि हम नहीं उड़ेंगे तो उड़ते हुए झुंड में उसका रहना असंभव हो जाएगा। इसी तरह से मैं आपको कहती हूँ कि आपको ध्यान शिबिर में आना है, तो उर्ध्वीकरण के प्रति सजग रहना पड़ेगा। तभी इस ध्यानियों के संघ में रह पाओगे, अन्यथा पीछे छूट जाओगे। मैं नहीं चाहती हूँ कि आप पीछे छूट जाओ। यहाँ कुछ लोग गलती से ऐसे भी आ जाते हैं कि वे अध्यात्म के आसमान में उड़ती हुई अन्य चेतनाओं का खाली निरीक्षण करना चाहते हैं। यह संघ में रहकर संभव नहीं। ऐसी गलती मत करना। ऐसा करना है तो दूर रहकर करो। जैसे कि आदमी धरती पर रहकर खड़े खड़े देख लेते हैं उड़ते हुए झुंड को। कभी कभी कुछ लोग यहाँ ऐसे आ जाते हैं कि उड़ने की इच्छा तो है परंतु आलसी हैं। साथ साथ ऐसी प्रकृति वाले लोग मैंने देखे हैं कि उसको उड़ना भी है और बंधे भी रहना है। उसकी स्थिति त्रिशंकु जैसी हो जाती है। ऐसे लोग विक्षिप्त हो जाते हैं और दूसरों को विक्षिप्त कर देते हैं। मत करना ऐसा। अगर ऐसा है तो आधे अधूरे मन से मत आना यहाँ।

अध्यात्म के आसमान में उड़ने से मनुष्य के भीतर का पक्षित्व सार्थक होता है।

और अब याद रखो एक अंतिम बात, शाम के वक्त आसमान में उड़ता पक्षी समूह क्या संदेश देता है मनुष्य को? वह पक्षी झुंड कहता है कि अब बहुत हो गया, घूम लिया, फिर लिया, मौज मस्ती कर ली, सुख-दुःख सब देख लिया, दाने भी चुग लिए अब परितृप्ति है लौट आओ अपने घर वापस।

प्रिय साधको!

उड़ते पंछियों पर ध्यान करने की विधि तो छोटी सी है। निरर्थक चीजों को भस्मीभूत करने के लिए एक चिंगारी काफी

है। फिर भी मैंने विस्तार किया है। यह विस्तार जानबूझ कर किया है। ध्यान से अंतरचेतना जाग उठती है परंतु अंतरचेतना के जागृत होने के पहले मनुष्य चित्त को ध्यान विधि के लिए तैयार करने के लिए यह सत्संग अनिवार्य है।

“खग उड्डियन प्रवेश ध्यान” में देखते रहो पंछी की उड़ान, जब भी मौका मिले। इसमें कोई संघ की आवश्यकता नहीं है। जहाँ भी जब भी मौका मिले इस दृश्य को देखने को कुछ क्षणों के लिए रुक जाओ। देखते रहो आसमान में। अकेला पंछी उड़ रहा हो या पूरा झुंड हो परंतु हो जाओ तद्रूप उस उड़ान की प्रक्रिया में। विश्व साक्षी और स्वयं साक्षी आत्म चेतना को जगाओ। कुछ देर के लिए दुनियाँ से ऊपर उठ जाओ। आपकी चेतना को बहने दो उस उड़ान के साथ। याद रहे आपको तद्रूप होना है उड़ान में, पक्षियों में नहीं। पक्षियों के रंग-रूप में मत भटक जाना। अचानक आप पाओगे कि आप भी उड़ रहे हो। आप एक हल्कापन महसूस करोगे। और यह क्षण ही साक्षात्कार का है। बिना विलंब खो जाओ उस क्षण में, और लौट आओ घर वापस। यही परम विश्राम की अवस्था है।

धारणा - १६

ध्रुव तारक प्रवेश ध्यान

प्रिय साधको!

ध्यान, कुदरत और रहस्यवाद इन तीनों के बीच में गहरा तालमेल है। कुदरत में रोज़ नए नए रहस्य घटते रहते हैं और ध्यान में भी। इसलिए मैं कहती हूँ कि हर रहस्यपूर्ण घटना किसी परम शक्ति के प्रति इशारा करती है। इतना ही नहीं परंतु कुदरत की गोद में घटती हुई कुछ सुंदर रहस्यमयी घटनाएं, जो प्रत्यक्ष भी हैं और रहस्यपूर्ण भी हैं। ऐसी घटनाएं एवं विषयों का आधार लेकर मैंने बहुत सारी ध्यान विधियों को विकसित किया है।

“ध्रुव तारक प्रवेश भाव” – यह धारणा आपको अन्य कोई ध्यान शास्त्र में नहीं मिल सकती। हाँ! ध्रुव तारे की महिमा आपने बहुत जगह पढ़ी होगी। मैंने उस महिमा का उपयोग कर लिया है, यहाँ ध्यानियों के लिए, साधकों के लिए। आसमान के सितारों को देखकर कभी कभी प्रश्न उठता है कि उन सितारों का आधार क्या है? सायन्स भले कुछ भी सिद्ध कर दे परंतु उन सितारों को आधार तो किसी परम चेतना ने ही दिया है। संभव है कि विज्ञान कोई दूसरा तारामंडल भी बना ले। परंतु वह तारामंडल कृत्रिम कहलाएगा। वह तारामंडल असल तारामंडल जितना पुरातन, शाश्वत, विशाल, अद्भुत और रहस्यमयी कभी नहीं हो सकता। किसीने किसी भी चीज़ को हूबहू रच लिया इसका अर्थ है रहस्य खत्म हो गया। परंतु ऐसा कभी संभव नहीं होगा। क्योंकि अगर ऐसा हुआ होता तो करोड़ों वर्ष की पृथ्वी पर विज्ञान ने अपने बल और इजाद से कुदरत, परमात्मा और दैवी शक्ति की धारणा खत्म करने में सफलता प्राप्त कर ली होती।

ध्यान, तंत्र पर आधारित है। ध्यान विधि से एक साथ बहुत सारे तंत्रों पर भी प्रभाव पड़ता है। तंत्र मनुष्य की अतिचेतस शक्तियों को जाग्रत कर सकता है। विज्ञान केवल पदार्थ के द्वारा पदार्थ पर प्रयोग करता है। सफलता दोनों में मिलती है परंतु एक का रहस्य अकबंद रहता है, दूसरे का वर्णनीय है। विज्ञान का प्रयोग थीअरी को पढ़कर कोई भी कर सकता है। तंत्र हर किसी के बस का नहीं। विज्ञान से रौबोट बनता है, तंत्र से गणेश प्रगट होते हैं। आपको शायद पता होगा कि शिव और पार्वती तंत्र के सर्वप्रथम और सर्वश्रेष्ठ पुरस्करता और प्रणेता हैं। विज्ञान में टेक्नीक और मशीन का प्रभाव दिखता है, तंत्र में दैवी शक्ति का।

मैं तो यह कहूँगी कि न्यूटन, आईन्स्टाईन और अन्य वैज्ञानिक भी उनके मन की अतिचेतस शक्तियों के द्वारा ही कुछ

आविष्कार कर सके हैं। अगर पदार्थ से ही सबकुछ जाना जा सकता है तो विज्ञान के मार्ग पर जाने वाला हर व्यक्ति पुरुषार्थ करने के बावजूद भी इतनी सफलता प्राप्त क्यों नहीं कर सकता ?

प्रिय साधको !

ध्यान मार्ग में भी ऐसा है। जैसे स्कूल में जाने वाला हर बच्चा पीएच.डी. तक नहीं पहुंच सकता; ऐसे ही ध्यान शिबिर में आने वाला या ध्यान में बैठने वाला हर साधक समाधिस्थ नहीं हो सकता।

ध्यानी के लिए सितारे दो संदर्भ में मदद कर सकते हैं। एक बात तो यह है कि प्रत्येक सितारा एक सूर्य के समान है। उसका प्रकाश उधार नहीं है। स्वयं के प्रकाश से उसका अस्तित्व टिका है। साधक के लिए यह बात बहुत बड़ी प्रेरणा बन सकती है। आसमान में झिलमिलाता हर सितारा मनुष्य को संदेश देता है कि दुनियाँ कि नज़रों में आप छोटे हो या बड़े, आध्यात्मिक दृष्टि से देखें तो इससे कोई फर्क नहीं पड़ता परंतु आपका तेज आपका ज्ञान आपका अस्तित्व स्वनिर्भर होना चाहिए।

बुद्ध ने यह तो कहा था, अप्पदीपोभव। अप्पदीपोभव का अर्थ और क्या हो सकता है ? तू तेरा प्रकाश बन। तेरे प्रकाश को ढूँढ़। स्वप्रकाश में जी ले। प्रत्येक सितारे से मिलता हुआ यह संदेश और प्रेरणा साधक के जीवन में क्रांति ला सकता है। दूसरे संदर्भ में देखा जाए तो सितारे को देखकर आप पूरी रात ध्यान कर सकते हैं, जैसी आपकी साधना की क्षमता। सितारे की रोशनी आपको अच्छी लगेगी, सहज और स्वाभाविक लगेगी, शांति देगी, प्रसन्नता देगी, वह आपको चकाचौंध नहीं कर देती है, आप चाहें तो घंटों तक सितारे पर ध्यान कर सकते हैं।

प्रिय साधको !

वैसे तो आप किसी भी तारे पर, या एक साथ समग्र तारामंडल में एकाग्र होकर ध्यानस्थ हो सकते हैं। परंतु मैंने यहाँ एक खास विधि बताई है। जिसका नाम दिया है “ध्रुव तारक प्रवेश भाव ध्यान”। ध्रुव तारे के प्रति लीन होकर निर्विचार हो जाओ।

आपके मन में प्रश्न उठ सकता है कि मैंने ध्रुव तारे पर ही ध्यान करने पर ज़ोर क्यों दिया है ? इसके पीछे भी कुछ कारण हैं।

खगोल शास्त्र कहता है कि चार प्रकार के तारे हैं – फिक्सड स्टार्स, बायनरी स्टार्स, टेम्पररी स्टार्स और वेरीएबल स्टार्स। सभी के गुण और स्वभाव भिन्न भिन्न हैं।

प्रिय साधको !

यहाँ मुझे एक खास बात करनी है। जिस पर आप भी विशेष ध्यान देंगे। जैसे खगोल शास्त्र चार प्रकार के तारों की बात करता है। वैसे ही ध्यान मार्ग में साधक चित्त का बरसों से गहन अभ्यास करने के बाद मुझे चार प्रकार के साधक नज़र आए हैं। यह बात मैं इसलिए कह रही हूँ कि आपको आत्मखोज करने में थोड़ी मदद मिल जाए।

प्रथम प्रकार के तारे हैं – फिक्सड स्टार्स। इस प्रकार के तारे अपनी जगह से विचलित होकर कोई अन्य स्थान पर कभी भी नहीं दिखते हैं। आपने ध्रुव तारे को देखा होगा, भक्त ध्रुव की अविचल भक्ति, ध्यान, साधना और सिद्धि की स्मृति में हमारे ऋषियों ने इस तारे का नाम “ध्रुव ताराक” रख दिया। कुछ साधक भी ऐसे अविचल होते हैं। भक्त ध्रुव को सुख, वैभव, राज्य सिंहासन और उसके सद्गुरु भी विचलित नहीं कर पाए। ऐसे साधक के साथ हम भी धन्य हो जाते हैं। ऐसे साधक मुश्किल से मिलते हैं। जो किसी भी परिस्थिति में साधना से विचलित नहीं होते। वे ध्यान को समर्पित होते हैं। ध्यान उसका सर्वस्व होता है। ऐसे साधकों के लिए ध्यान परमात्मा का पर्याय बन जाता है। ऐसे साधक अकेले साधना करने के लिए सक्षम

होते हैं।

दूसरे प्रकार के तारे हैं – बायनरी स्टार्स। यह ऐसे तारक समूह हैं कि जो परस्पर की गुरुत्वाकर्षण शक्ति के आधार से केन्द्र बिन्दु के इर्द गिर्द रहते हैं। अर्थात् उनके अस्तित्व के लिए उन्हें एक दूसरे की सहायता की आवश्यकता है। कोई तारा अगर इस चुम्बकत्व की परिधि से बाहर निकल जाए तो टिक नहीं पाता। ध्यान रहे, साधना में ज्यादातर लोग ऐसे ही होते हैं। मैंने बड़ौदा में “ध्यान मंदिर” सबके लिए खुला छोड़ा है। जब ध्यान शिबिर होती है, तब साधक समूह प्रातः ६ बजे आ जाते हैं। वहाँ प्रारंभ में मैं केन्द्र में होती हूँ। मेरी उपस्थिति, मेरे शब्द, मेरी ऊर्जा और शक्तिपात के लिए लोग आते हैं। हकारात्मक ऊर्जा से पूर्ण, और ध्यान के हेतु से आए हुए साधकों की तरंगें एक दूसरों की सहायता करती हैं। शिबिर के दौरान समग्रता से मेरा प्रयास रहता है कि मेरे स्थान पर उन लोगों के लिए केन्द्र में ध्यान आ जाए। कुछ दिन के लिए ऐसा घटता भी है। शिबिर पूर्ण होने के बाद वे लोग भी चाहते हैं कि अब हम रोज ध्यान मंदिर में आकर ध्यान में बैठें परंतु वे फिक्सड स्टार्स जैसे नहीं होते हैं। धीरे धीरे संख्या कम हो जाती है। वे ऐसे साधक हैं कि एक दूसरों के बल से खिंचे आते हैं, गृप में बैठकर ध्यान कर सकते हैं। परंतु संघ बल के बिना टूट जाते हैं। अकेले ध्यान करना और ध्यान मार्ग पर टिके रहना उसकी क्षमता के परे है। मैं चाहती हूँ, ऐसे साधक ध्रुव तारक को देखकर और ध्रुवतारक प्रवेश ध्यान करके अपनी आंतरिक शक्ति को विकसित कर लें।

तीसरे प्रकार के तारे हैं – टेम्पररी स्टार्स। ऐसे तारे अचानक चमकते हैं और कुछ ही समय में निस्तेज हो जाते हैं। विज्ञान उसे “नोवा” के नाम से भी पुकारता है। साधना मार्ग में भी ऐसे कुछ लोग आ जाते हैं। अचानक चमकने लगते हैं। लगता है कि यह साधक पहुँच जाएगा। दिखावा भी बहुत करते हैं। सबसे पहले आ जाते हैं। और अचानक अदृश्य भी हो जाते हैं। कभी उसको बाहर देख लें तो निस्तेज दिखाई देते हैं। ये क्या है? यह है, आध्यात्मिक अपरिपक्वता। मुमुक्षा नहीं केवल कुतुहल।

“दुविधा में दोनों गए, माया मिली न राम।”

यह उक्ति आपने सुनी होगी। बस, ऐसी ही मनोदशा में हैं ये लोग। इनका मन स्पष्ट नहीं होता है। कोई आत्मबोध नहीं है। इसके मन में हमेशा चलता है कि यह भी कर लूँ, वह भी कर लूँ। यहाँ से भी पा लूँ, वहाँ से भी पा लूँ। इनके हृदय में ध्यानस्थ होकर न्यौछावर हो जाने का कोई भाव ही नहीं है। ये कुछ न कुछ पाने की भाषा ही समझते हैं। परंतु इनको पता नहीं कि ध्यान में तो खोना ही खोना है। ऐसे लोग जब ध्यान शिबिर में आते हैं तब कुछ पा लेने के भाव से उत्साहित दिखाई देते हैं। क्षणिक उत्साह की चमक होती है इनके चहरे पर। परंतु जैसे ही इनकी समझ में आ जाता है कि यहाँ तो सबकुछ खोना पड़ेगा तब पलायन कर देते हैं। दुनियादारी में तो शाश्वत सुख है ही कहाँ! इसलिए निस्तेज हो जाते हैं। परंतु ऐसे साधकों के लिए भी रास्ता खुला है। ऐसे साधकों को निराश नहीं होना है। सद्गुरु को भी ऐसे साधकों के साथ बहुत धैर्य से करुणा से और उदारता से काम लेना होता है। बीमार को ही डॉक्टर की जरूरत होती है। ऐसे साधकों की समझ बढ़ाने के लिए प्रबुद्ध संतो को ज्यादा समय देना होगा, ज्यादा धैर्य रखना होगा और ज्यादा शक्तिपात करना पड़ेगा। ऐसे साधक में समझ जगानी पड़ेगी कि दो घोड़ों पर एक साथ सवार नहीं हुआ जा सकता।

चौथे प्रकार के तारे हैं – वेरिएबल स्टार्स। इस प्रकार के तारों की चमक समय समय पर बदलती रहती है। कभी बढ़ती है, कभी कम हो जाती है, कभी फिर से बढ़ जाती है। इस बात पर मैं ज्यादा ज़ोर देना चाहती हूँ। ऐसे साधकों को मेरी प्रेरणा की ज्यादा आवश्यकता है। आज का माहौल परिस्थितियाँ और मानव मन ऐसा होने के लिए जिम्मेदार हैं। ऐसे साधकों को सद्गुरु के प्रेम, वात्सल्य और मार्गदर्शन की बहुत जरूरत है। कुछ साधक परिस्थितियों की वजह से कभी कभी साधना से विचलित हो जाते हैं। वे ज्यादा इमोशनल होते हैं। उनके भीतर प्यास भी है, आग भी है, उन्हें साधना अच्छी भी लगती है, वे

ध्यान में उतर भी सकते हैं, लेकिन वे छोटी छोटी बातों को मन पर ले लेते हैं। माहौल के असर में आ जाते हैं। परिस्थितियों का शिकार बनकर साधना से दूर हट जाते हैं। परंतु प्रमाणिक होने की वजह से फिर फिर के लौट आते हैं ध्यान की ओर। छोड़ नहीं पाते हैं ध्यान को। फिर से चमक उठते हैं। और फिर फिर के साक्षी भाव के अभाव में निस्तेज भी हो जाते हैं।

प्रिय साधको !

मैं सब प्रकार के साधको से कहती हूँ कि यह विधि अर्थात् ध्रुव तारक प्रवेश भाव आपकी मदद करेगा, आपको स्थिरता देगा। आ जाओ खुले मैदान के नीचे। रात्रि की निरव शांति में। आसमान के नीचे बैठकर किसी भी आसन में देखते रहो ध्रुव तारक को। देखते देखते कुछ ही क्षणों में सारे विचार शून्य हो जाएंगे। परम शक्ति का प्रभाव सविशेष रूप में समझ में आता जाएगा और आप पर असर करता जाएगा। बिना आधार, स्थिर, प्रकाशित, सुंदर और प्रेरक ध्रुव तारे में विशेष रूप से चित्त शक्ति का एकरूप होते ही आप विशिष्ट शक्ति से भर जाएंगे। वही ब्रह्मानंद की अवस्था है, वही परमानंद की अवस्था है। खो जाओ उस अवस्था में वह अवस्था आपके जीवन की गुणवत्ता बढ़ा देगी।

धरणा - १७

चंद्र प्रकाश प्रवेश भाव ध्यान

प्रिय साधको !

मैंने बहुत बार कहा है कि कुदरती चेतना और मानव चेतना का बड़ा गहन संबंध है। कुदरत में हजारों हजारों तत्वों का समावेश होता है। इस कुदरत का एक अंग है - चंद्र। मनुष्य मन पर कुदरत के किसी तत्व का अगर सबसे ज्यादा प्रभाव पड़ता है तो वह है चंद्र का प्रभाव। वैसे तो जड़ चेतन सब पर उसका प्रभाव है। समुद्र उसका सबसे बड़ा प्रमाण है। चंद्र के बढ़ते ही समुद्र की मौजें और उछलती हैं। जल प्रवाह बढ़ता है और चंद्र की कला घटने के साथ वह शांत होती हैं। शायद किसी भी साहित्यकार को चंद्र के रूपक या उपमा का उपयोग किए बिना नहीं चला है। मिलन और विरह दोनों में चंद्र की असर है। बढ़ता चंद्र आकर्षण, प्रेम, उत्साह और शीतलता का प्रतीक है।

इतिहास और पुराण में चंद्र की कथा भी पढ़ेंगे तो चंद्र का पात्र रोमेन्टिक और ओवर बोल्ड नजर आता है। चंद्र ने दुन्यवी प्रेम भी मन भर के किया है। और अपने इष्ट शिव को भी पूर्ण रूप से समर्पण किया है। प्रेम के उन दोनों बिन्दुओं की ऊँचाई पूरे इतिहास में भाग्य से ही कहीं ढूँढ पाएंगे। चंद्र का प्रेम और चंद्र की भक्ति एवं ध्यान तीनों इतिहास में अमर हो गए हैं। सोमनाथ ज्योतिर्लिंग चंद्र की भक्ति का प्रमाण है। सोम का अर्थ है चंद्र।

ये सब विस्तार मैं सहेतुक कर रही हूँ। सामान्य मनुष्य की भूमिका तो साधारण ही रहेगी। ज्यादातर लोग दुन्यवी प्रेम से परम प्रेम तक पहुँचना सीखते हैं। देवताओं के साथ भी ऐसा घटा तो मनुष्य तो क्या? कहने का तात्पर्य यह है कि आपका दुनियादारी में जीना ये कोई अपराध नहीं है। क्योंकि आपको वही भूमिका मिली है। यह बिल्कुल मानवीय है, सहज है, स्वाभाविक है परंतु याद रहे दुन्यवी आकर्षण जितना स्वाभाविक है इतना ही स्वाभाविक आध्यात्मिक आकर्षण है। आध्यात्मिकता को कोई उपग्रह की चीज़ या कठिन बात कभी मत समझना। शरीर और आत्मा के संयोग से पार्थिव जीवन संभव बनता है। उस जीवन में जो पार्थिवता का आकर्षण है, ये जीवन का एक बिंदू है और आध्यात्मिक आकर्षण दूसरा बिंदु है। जैसे कि दो कोलम पर खड़ा हो एक सेतु। क्योंकि पार्थिवता तभी जीवंत हो पाएगी जब उसमें चैतन्य (आत्मा) का प्रवेश हो और आत्मा तभी क्रियान्वित होकर दृष्टिगोचर हो पाएगी जब वो पार्थिवता का आधार ले।

प्रिय साधको !

आपको पता है कि जिसका मन दूषित हो गया हो ऐसे लोग पागल हो जाते हैं। धर्म शास्त्र चंद्र को मन का देव कहते हैं। मन के दैवी गुण के रकास से जिसका मन अति अस्वस्थ हो गया है ऐसे पागलों को अंग्रेजी में ल्यूनेटिक कहते हैं। ऐसे लोग शुक्ल पक्ष में ज्यादा उन्मादी हो जाते हैं।

पागलपन दो प्रकार का होता है। भावनाओं पर सदमे या किसी गहरी चोट की वजह से जिसका मन काफी विक्षिप्त हो जाता है ये एक प्रकार का पागलपन है। और कुछ लोग मन से ऊपर उठ जाते हैं; उन्हें भी दुनियाँ पागल कहती है यह आध्यात्मिक पागलपन है। ऐसा पागलपन शुभ है।

मैं कहती हूँ कि विज्ञान के तीन प्रकार हैं एक मनुष्य के भीतर का विज्ञान, दूसरा बाहर का विज्ञान, अर्थात् मनुष्य के द्वारा जो इजाद किया गया। ये दोनों सीमित हैं। परंतु एक तीसरा भी विज्ञान है जो ब्रह्मांड और ब्रह्मांड के जीवों के बीच का है। यह विज्ञान दोनों के बीच का एक अदृष्ट सेतु है। इसके कई रहस्यों को वैज्ञानिक नहीं जान पाए हैं। और जब विज्ञान इस रहस्य को जान लेगा तब वे अपने प्रयोगों में ध्यान का समावेश कर लेगा। क्योंकि उस विज्ञान को जानने के लिए ध्यान ही माध्यम है।

प्रिय साधको!

इतनी सारी भूमिका इसलिए बनाई कि आप मन, शरीर और चेतना को अलग अलग स्तर से समझ पाओ। इसके साथ साथ कुदरत और आपके बीच में ताल बिठा पाओ। जब तक कुदरत और आपके बीच में सही ढंग से ताल नहीं बैठेगा तब तक कुदरत आधारित जितनी भी ध्यान विधियाँ हैं, वे आपकी मदद नहीं कर पाएंगी। इतना ही नहीं अन्य विधियों में भी परोक्ष रूप से कहीं न कहीं कुदरत तो जुड़ी हुई ही है। इसलिए मानव और कुदरत के बीच समस्वरता अनिवार्य है।

प्यारे साधको!

अब आपने समझ लिया होगा कि चंद्र कुदरत का एक ऐसा अंग है कि जो आपके मन को उन्मादित भी कर सकता है और अगर आप कुछ ध्यान कला को सीख लें तो उसी चंद्र के माध्यम से आप मन के उस पार भी जा सकते हैं। यह एक बड़ी आश्चर्यजनक घटना है। एक अजीब बात है। लेकिन इस विधि में उतरोगे तभी उसको पता चलेगा।

प्रिय साधको!

शुक्ल पक्ष में आसमान सौंदर्य से निखर उठता है। चंद्र का प्रकाश शांति और शीतलता भी देता है। रात्रि का समय साधना के लिए श्रेष्ठ है। इस बात को श्री कृष्ण शायद सबसे ज्यादा समझ पाए थे। उन्होंने श्रीमद् भगवद् गीता में कहा है कि—

या निशा सर्वभूतानाम् तस्याम् जागर्ति संयमी...

यह बड़ी प्यारी बात है। कामांध और प्रमादी मनुष्य न तो इस बात को समझ सकता है, ना ही इस बात का अनुसरण कर सकता है। केवल साधना का प्यासा मनुष्य ही गीता के इस श्लोक को आत्मसात कर सकता है।

योगेश्वर कृष्ण कहते हैं कि दुनियाँ के सर्व जीवों के लिए जो रात्रि है अर्थात् जब सारे जीव सो जाते हैं तब संयमी पुरुष जागता है। अर्थात् निद्रा, प्रमाद और दैहिक सुख को छोड़कर साधना के द्वारा आत्मोन्नति पा लेता है। और जिन बातों के लिए दुन्यवी जीव जागे हुए होते हैं; जो मन से मौन हो गए हैं ऐसे परम साधक उनके अंधकार को देख सकते हैं। यह अर्थ आपने जो पढ़ा है उन अर्थों से थोड़ा अलग लगेगा। परंतु यही सही अर्थ है। क्योंकि संयमी योगी को तो जागना ही जागना है। वह सदंतर जागता ही रहता है। निद्रा में भी वह जाग्रत रहता है। बुद्ध करवट भी लेते थे तो होश के साथ लेते थे। आचार्य शंकर ऐसे योगियों की निद्रा को “निद्रासमाधिस्थिति” कहते हैं।

कबीर भी इस अवस्था तक पहुँच गया था। उसने कहा है कि —

सुखिया सब संसार है खाबे और सोबे।

दुखिया दास कबीर है जागे और रोबे ।।

अगर समझो तो उसका रोना सूचक है । उसका दुख वैश्विक है ।

खैर ! घूम फिर कर मुझे एक ही बात पर जोर देना है और वह यह है कि आप ध्यान में उतरो । और मैं आपको अनेक अनेक विधियाँ दे रही हूँ । आपकी चेतना जहाँ स्थिर हो उस विधि में प्रवेश कर लो । उनमें से एक विधि है – “चंद्र प्रकाश प्रवेश भाव ध्यान” ।

अब ध्यान से समझ लो इस विधि को । बहुत हो गई चंद्र पर कविताएं, बहुत हो गई मिलन की शायरियाँ और विरह के गीत । बहुत बहला लिया दिल को सजीवारोपण अलंकार से । अब छोड़ो निरर्थक कल्पनाएं । जैसे कि –

चांद अंगड़ाईयाँ ले रहा है ।

चांदनी मुस्कुराने लगी है ।

परंतु वहाँ कोई अंगड़ाई नहीं ले रहा है । चांद अंगड़ाई लेगा तो धरती पर कोहराम मच जाएगा । अब उतर जाओ उपयोगी धारणाओं में । प्रेयसी के चहरे को चांद की उपमा देने वालों को पता नहीं है कि सत्य क्या है ? पूछो जो चंद्र पर हो आए उनको, वहाँ कंकड़ पत्थरों के सिवाय कुछ भी नहीं है । हकीकत में चंद्र पर हो आओगे तो प्रियतमा को चांद की उपमा देना भूल जाओगे । मैं कहती हूँ कि चांद के रूप की बातें छोड़ो, ध्यान के ज़रिए उसके गुणों में उतर जाओ । उपयोग कर लो उस पूर्णिमा के प्रकाश का आत्मप्रकाश के ज़रिए ।

चांदनी रात में, अगर संभव है तो पूर्णिमा की रात में उस शीतल प्रकाश की आराधना कर लो । खुली आंख से ध्यान करते करते उस कुदरती सोमरस का पान कर लो । कुछ ही क्षणों में आपका व्यक्तित्व और विचार गिरने लगेंगे, अदृश्य होते जाएंगे । और अचानक आपके भीतर वह बोध जग जाएगा कि आप और वह परब्रह्म भिन्न भिन्न नहीं हैं, एक ही हैं । यही है, सच्चिदानंद की प्राप्ति । यही है सच्चिदानंद अवस्था ।

धरणा - १८

भ्रमर गुंजन श्रवण ध्यान

प्रिय साधको !

दुनियाँ के किसी भी विषय को आप ध्यान का विषय बना सकते हैं । अगर सद्गुरु से इलम को पा लो तो एक छोटा सा भ्रमर भी आपकी मदद कर सकता है । पूरे ब्रह्मांड के जीव एक दूसरों की मदद प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कर रहे हैं । पागल और कंजूस के सिवाय हर व्यक्ति इस बात का स्वीकार करेगा ।

हाँ ! लोगों को समझाना जरूर पड़ेगा । कुदरत के रहस्यों को जानने के लिए उसको जगाना पड़ेगा । पशु-पक्षी, पेड़-पौधे और कीट-पतंग जैसे सूक्ष्म जीवों के लिए उसे और संवेदनशील बनना पड़ेगा । जब थोड़े से भी जागकर मेरी बात पर सोचेंगे, तो उन सूक्ष्मताओं का अनुभव होने लगेगा ।

प्रिय साधको !

आप पूरे ब्रह्मांड से एक या दूसरे रूप से मदद तो पा रहे हैं । परंतु उस मदद के लिए आप सजग नहीं हैं । जैसे कि आप श्वास लेते हैं, श्वास में हवा के द्वारा बहुमूल्य प्राणवायु आपको सौगाद के रूप में मिल रहा है । आपके जीवन के लिए जो अनिवार्य है । इतनी बड़ी और बहुमूल्य मदद हवा के द्वारा आपको सहज ही कोई विक्षेप किए बिना मिल जाती है । परंतु कुछ लोग ऐसे हैं कि जो इस मदद के लिए सजग नहीं । और लोहार की धोंकनी की भांति जिंदगी भर हाँफते रहते हैं ।

अगर यह ब्रह्मांड रहस्यों से नहीं भरा होता तो खोजियों को क्या जरूरत थी खोज करने की ? इस ब्रह्मांड में खोज करने योग्य कुछ है। इसलिए खोज हो सकती है। और इन विविध खोजों में से विविध विषय के अनेकानेक शास्त्र और यूनिवर्सिटी में अभ्यास की विविध शाखा प्रशाखाएं खुल सकीं हैं।

मैं घोषणा करती हूँ कि भले और कितनी भी शाखाएं खुल जाएं, भले नई नई माहितियाँ मिल जाएं, लोग भले इस विषय पर डिग्रियाँ भी ले लें, भले तजज्ञ अपनी अपनी सफलता का दावा भी करते रहें, फिर भी मैं कहूँगी कि इस ब्रह्मांड के रहस्यों को पूर्ण रूप से कोई भी नहीं जान पाएगा। क्योंकि मनुष्य एक चीज़ को इजाद कर लेगा तो ब्रह्मांड में सैकड़ों चीज़ें नई घटेंगी। कहाँ कहाँ पहुंचेगा मनुष्य ? कैसे जानेगा विराट का पूर्ण रहस्य वामन मानवी !

ध्यान शास्त्र बिलकुल नए तरीके से काम करता है। ध्यान शास्त्र ने एक नया मार्ग ढूँढ निकाला है। वह कहता है कि कैसे ? क्यों ? किसलिए ? इन प्रश्नों में मत पड़ो। जितना हो सके उतना अस्तित्व से प्राप्त कर लो। ध्यान शास्त्र कहता है कि प्रश्नोत्तरी से मत जानो। अपने अपने अनुभव में उतरो। अनुभव आपको सारे प्रश्नों का जवाब दे देगा। ध्यान करते करते जब समाधिस्थ हो जाओगे तब सारी समस्याएं स्वतः ही शांत हो जाएंगी।

रजकण से लेकर पर्वत तक और बूंद से लेकर महासागर तक सबकुछ अस्तित्व का अंश है। चीन के ध्यान मास्टर च्यांगत्सू सपनों पर ध्यान करते थे। तितलियों पर ध्यान करते थे। जब आप कुछ पाने के लिए तैयार हैं तब कहीं से भी प्रेरणा मिल सकती है।

यहाँ मैंने भ्रमर की गुंजन पर ध्यान करने की एक विधि दी है। ध्यान रहे, भ्रमर को लोगों ने बहुत बदनाम किया है। भ्रमर के प्राकृतिक गुण को दुनियाँ ने विकृत अर्थ में ले लिया है। अपनी विकृतियाँ पशु पक्षियों पर थोपने की मनुष्य को आदत है। जैसे मूर्ख को गधा कहते हैं। चंचल व्यक्ति को बंदर कहते हैं। भयभीत को शत्रुमुर्ग (ओस्ट्रिच) कहते हैं। कटु वचन बोलने वाले को कौआ कहते हैं। हकीकत में ये सभी पशु-पक्षी निर्दोष हैं। वे सब अपनी अपनी प्राकृतिकता में जीते हैं, केवल मनुष्य अप्राकृतिक हो गया है। विविध नारियों में सम्मोहित होकर उनका लाभ उठाने वाले पुरुष को भ्रमर वृत्ति का पुरुष कहते हैं। लेकिन यह गलत है। यह रसिक कवियों की भ्रमर पर थोपी हुई कल्पना है।

कभी देखा है आपने बाग बगीचे में भ्रमर को ? शास्त्र में तो भ्रमर की पुष्पों में से रस लेने की क्रिया को सराहा है।

षट्पदम् पुष्पमध्यस्थम् यथा सारं समुद्धरेत्

तथा ही सर्वशास्त्रेभ्यो सारं गृह्णाति बुद्धिमान्।

जैसे भ्रमर सभी पुष्पों में से सार को ग्रहण करता है। वैसे ही बुद्धिमान पुरुष सर्वशास्त्रों में से सार तत्व को ग्रहण करता है।

भ्रमर किसी भी पुष्प को न तो हानि पहुंचाता है, ना कोई जबरदस्ती करता है, न ब्लेकमेल करता है। वह तो पुष्प के गुण रूप, औषधि को सहजता से लेकर उसे चिटके बिना उड़ जाता है। इतनी अद्भुत कला और सिद्धि को कुछ मूर्खों ने उनके अज्ञान के कारण कितना विकृत कर दिया। कभी कभी कुछ ज्ञान शास्त्रों में भी किसी ने क्षेपक चीजों को जोड़ दिया हो ऐसा प्रतीत होता है। फिर भ्रमरगीतों की परंपरा कवि कल्पना से आगे बढ़ती है।

स्वैर ! मैं तो यह कहूँगी कि समग्र अस्तित्व समग्र अस्तित्व को मदद करता है। इसके साथ साथ यह भी याद रहे कि अस्तित्व का हर तत्व न्यूट्रल है। कुदरत मनुष्य को सहायता करने पर भी साक्षी रहता है। बात यह है कि आपका मन उसमें हकारात्मक या नकारात्मक कैसे भाव का आरोपण करता है। हकारात्मक भाव को आरोपित करने की कला बन जाता है, ध्यान।

यहाँ मैं विधि बताना चाहती हूँ भ्रमर गुंजन श्रवण भाव की। यहाँ फिर से एक बार शांति में प्रवेश के लिए आपके श्रवण (कान) और भ्रमर उपकरण बन जाएंगे। उसका आधार लेकर आपको प्रवेश करना है, एक विशिष्ट अवस्था में। ध्यान रहे उड़ते भंवरे को आँखों के द्वारा इधर उधर जाते हुए देखना नहीं है। छोटी सी गलती मन को चंचल कर सकती है, विपरीत परिणाम ला सकती है। प्रत्येक विधि को पहले ढंग से समझना। अगर मेरी उपस्थिति नहीं है और मेरे प्रबोधे हुए शास्त्र की मदद लेकर आप विधि में उतर रहे हैं तो दो बार पढ़ना, जरूरत लगे तो बार बार पढ़ना। उसे मस्तिष्क से नहीं, अंतर से पढ़ना। आपकी अंतरचेतना विधि समझने में आपकी मदद करेगी।

तो फिर से ध्यान दीजिए। घर से निकलकर बैठ जाईए बगीचे में। वहाँ भ्रमर की गुंजन सहज उपलब्ध हो जाएगी। आँख बंद करके खो जाओ उस गुंजन में, उस स्वर में, उस लय में, उस ताल में, कभी कभी लगता है कि भटकते हुए मनुष्य के स्वर और लय से घूमते हुए भंवरे के स्वर और लय में ज्यादा सुरीलापन और लयबद्धता है। प्रकृति के संग का यह प्रभाव है। ध्यान से सुनना उसकी आवाज को। तब मेरी बात आसानी से समझ में आ जाएगी। कुछ सूक्ष्म स्वर होते हैं तो कुछ स्थूल। समग्र ब्रह्मांड की सभी ध्वनियों के कुछ सूक्ष्म स्वर ऐसे हैं कि जो एक दूसरे से मिलते हैं। उसे सुनने और समझने के लिए शांति, जागरुकता, रस, एकाग्रता और सूक्ष्मता चाहिए। उपवन का माहोल इस साधना में आपकी मदद कर पाएगा। आपकी समग्र शक्ति को श्रवणेन्द्रिय में संजोकर निम्न दृष्टि से या आँखें मूंदकर सुनते रहो बड़ी बारीकी से उस भंवरे की गुंजन को। कुछ समय के बाद आप महसूस करेंगे कि आपके भीतर की ध्वनियों के साथ वह गुंजन की ध्वनि एकरूप हो रही है। विशुद्ध चित्त से अन्य इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि के हस्तक्षेप के बिना सुनी गई उस गुंजन की ध्वनि, लय और स्वर में आप खोते जाएंगे। और खुद को खोने का क्षण ही विश्वरूपता में प्रवेश है। वही है साक्षात्कार। वही है अनिर्वचनीय शांति का अनुभव। वही है स्वरब्रह्म।

धरणा - १९

सरिता प्रवाह प्रवेश भाव ध्यान

प्रिय साधको!

सहजता और स्वाभाविकता ये दो गुण साधक में अनिवार्य रूप से होने चाहिए। ध्यान में किसी भी प्रकार की औपचारिकता को स्थान नहीं है। औपचारिकता के मुखौटे से अच्छी चीजें भी भद्दी हो जाती हैं। तथा सहजता और स्वाभाविकता से साधारण वस्तु या व्यक्ति भी सुंदर दिखने लगते हैं। आज मैं नदी प्रवाह के संग में लीन होने की विधि बता रही हूँ।

निकलो घर के बाहर। कभी कभी हो जाओ बंधनों से मुक्त। जी लो आपकी स्वाभाविकता के साथ। अपनी स्वतंत्रता में जीना ही सही जीवन है। भले कुछ ही पलों का हो ये जीवन! ध्यान के पल कुछ ऐसे ही होते हैं। समाधिस्थ अवस्था एक ही क्षण में पूरी जिंदगी जी ली हो इतना संतोष दे देती है। लेकिन आपको वहाँ तक पहुँचना पड़ेगा, बैठना पड़ेगा ध्यान में, उतरना पड़ेगा समाधि में। छोड़ो सारी झंझटे। अपने आप पर थोपे हुए नियंत्रणों से कभी तो मुक्त हो जाओ! ऐसी मुक्ति के कुछ क्षण आपको परम मुक्ति की ओर ले जाएंगे।

घर से निकलकर साधकों के साथ, दोस्तों के साथ या अकेले में। आकर बैठ जाओ प्रकृति की गोद में। अगर मुझे कोई प्रकृति के लिए कविता रचने को कहे तो मैं बचपन से सुना हुआ श्लोक –

त्वमेव माता च पिता त्वमेव.....

सीधा ही अर्पण कर दूंगी। प्रकृति सबसे ज्यादा अधिकारी की है इस श्लोक के लिए, ऐसा मुझे लगता है। प्रकृति के स्तन से, दुग्ध धारा सी बहती हैं नदियाँ। बैठ जाओ किसी भी नदी के तट पर।

नदी आपकी काफी मदद कर सकती है विकसित होने में। आपने कभी सोचा है कि नदी के प्रवाह में निरंतरता है। उसका प्रवाह कहीं भी रुकता नहीं है। उसमें कहीं भी विक्षेप नहीं है। प्रगट या गुप्त रूप से उसका प्रवाह बहता ही रहता है। बिल्कुल ईश्वरीय चेतना की तरह। नदी के प्रवाह के गुणों पर थोड़ी समझदारी के साथ केवल चिंतन करने से भी आप बदल सकते हो। मनन और चिंतन का इतना प्रभाव होता है तो सोचो ध्यान का कितना होगा!

जल प्रवाह के निरंतर बहते रहने में ही उसका नदीत्व सार्थक होता है। उसके निरंतर प्रवाहित होने की वजह से वह पूज्या और लोकमाता है। प्रवाह निरंतर बहने की वजह से ही वह जल प्रवाह शुद्ध रह सकता है। आपने देखा है डबरे के पानी को? गंदा, कीटाणुयुक्त और दुर्गंधयुक्त। डबरे के जल की कभी पूजा नहीं होती है। क्यों? वो ही पूज्य माना जाता है और उसका ही आदर किया जाता है जिसमें विकास, विशुद्धि और परोपकार के गुण हो। हमारे ऋषि-मुनि कोई पागल नहीं थे। आप जरा सोचना, धर्म शास्त्रों में जिन जिन चीजों को पूजनीय माना है, उन सबके बारे में। आपके बहुत सारे संशय अपने आप समाप्त हो जाएंगे। लेकिन मेरी दृष्टि से देखना अर्थात् स्पष्ट और सत्य रूप से देखना। ताकि तर्क बुद्धि आपके मन को विकृत न कर सके। मेरी दृष्टि से, आप किसकी पूजा करते हो यह बात महत्वपूर्ण है ही नहीं। आप जिसको पूज रहे हैं, उसकी विशुद्धता, विकास और उपयोगिता क्या है? यह देखने में समझदारी है।

प्रेम और भक्तिभाव के जगत में सबकुछ मान्य है। अपने विशुद्ध भाव से आप भले पत्थर को भी पूज लो। परंतु वहाँ मैं पूजने वाले के भाव को पूजनीय समझती हूँ। उन पूजा करने वालों की श्रद्धा को पूजनीय समझती हूँ। ध्यान विधि समझाने से पहले फिर से एक बार मैं सब साधको को कह रही हूँ कि डबरे के पानी जैसा बंद मत बनना। किसी भी धर्म या पारिवारिक बंधनों के बांध से अपनी निरंतर बहती हुई चेतना को कलुषित मत होने देना।

नित्य नूतनता नदी के प्रवाह का दूसरा गुण है। देखने में एक ही नदी लगती है परंतु उसका जल प्रतिपल नया होता है। एक ही जल प्रवाह को आपके चाहने पर भी ना दूसरी बार आप स्नान कर सकते हो, न उसे छू सकते हो, न उसका दर्शन कर सकते हो। यह नियम केवल नदी में नहीं अन्य भी बहुत स्थानों में लागू होता है। हमारे भीतर बहते रक्त प्रवाह में भी प्रतिपल कुछ नया जुड़ता है और पुराना नष्ट होता है। परंतु मनुष्य के पास समय ही कहाँ है कुदरत के इन सारे करिश्मों पर सोचने का? बेकार की सोच-विचारों में उसका सारा जीवन नष्ट हो जाता है। मुझे सुनने के बाद अब फिर से एक बार नई दृष्टि से देखना जल प्रवाह को।

नदी के जल प्रवाह का एक तीसरा गुण है – एकनिष्ठा। वह प्रवाह समग्र निष्ठा से गतिशील हो रहा है, महासागर की ओर। जल तो पंचमहाभूत में से एक ही तत्व है। फिर भी उसकी एकनिष्ठा में कोई कमी नहीं है। वह उसके मूल स्रोत को निरंतर ढूँढ रहा है अंतिम मिलन तक। परंतु मनुष्य पंचमहाभूत का जोड़ होने के बावजूद भी दैवी तत्व से जीवंत होने पर भी अपने मूल स्रोत के प्रति एकनिष्ठ नहीं है।

प्रिय साधको!

आ जाओ धार्मिक और साम्प्रदायिक संकुचितताओं से बाहर और उस महाचेतना के प्रति, जो चेतना आपमें आंशिक रूप से बिराज रही है; उस मूल स्रोत के प्रति एकनिष्ठ होकर यात्रा का आरंभ करो। धर्मों के भेदभाव से और खींचातानी से आपकी यात्रा विक्षिप्त होगी। ध्यान रहे! ध्यान मार्ग धर्मों के बाहर का नहीं परंतु अति धार्मिक पथ है। सब सीमाओं के पार जाने के बाद मनुष्य सही अर्थ में ध्यान में प्रवेश कर सकता है। मैं कहती हूँ कि आपकी श्रद्धा, आस्था, परंपरा, इष्टदेव इत्यादि

माध्यम भले बने आपके ध्यान के लिए। परंतु याद रहे, कि प्लेन में बैठकर सात समंदर पार करने के बाद प्लेन के लिए आभार प्रगट करने के लिए प्लेन को कांधों पर नहीं उठाया जाता। धर्म को ढोओ मत। उसमें कैद मत रहो। सिर्फ धर्म में जीओ। धर्ममय जीओ। मनुष्य को धर्मों की जरूरत नहीं है, धर्म भाव की और धार्मिक व्यवहार की जरूरत है। आपके और कुदरत के स्वभाव से विपरीत जाकर आप जो कुछ भी करते हो सब अधर्म हो जाता है। ध्यान आपको सही अर्थ में धार्मिकता प्रदान करेगा।

नदी के प्रवाह का एक चौथा गुण है – अल्हड़पन और मस्ती। जल प्रवाह उछलता, कूदता तट पर खड़े लोगों की किसी भी प्रकार की परवाह किए बिना अपनी मस्ती से बहता जाता है। जो चेतना उस प्रवाह का चालक बल है वही चेतना आपका भी चालक बल है। परंतु अफसोस! मनुष्य का सबकुछ औपचारिकतापूर्ण हो गया है। अनौपचारिक रूप से वह कुछ भी नहीं कर सकता। और दुनियाँ में दिखावे के लिए हो रही सारी औपचारिकताएं मनुष्य के अल्हड़पन और मस्ती को नष्ट कर देती हैं। क्या हो गया है मनुष्य को? उदासी, बेचैनी, तनाव, चिंता, ईर्ष्या, राग-द्वेष, लोभ और क्रोध ने घेर रखा है मनुष्य को।

मैं आपको ध्यान शिबिर में फिर से एक बार आपके दबे हुए अल्हड़पन और मस्ती को प्रगट होने का मौका देती हूँ। माहौल देती हूँ, कम्पनी भी देती हूँ। मैं आपके साथ गाती हूँ, नाचती हूँ, झूमती हूँ, हंसती हूँ, कभी कभी संवेदनशील होकर रोती भी हूँ। अब तो आ जाओ अपने मूल स्वरूप में।

जल प्रवाह का एक पांचवां गुण है स्वीकार। आप जितने ज्यादा प्रवाहित होंगे उतने ज्यादा लोग आपके करीब आ पाएंगे। जरूरी नहीं कि वे सब हकार से भरे हों। डबरे का जल कोई गाँव या शहर से नहीं गुजर सकता है। कोई संपर्क नहीं होता है उसका किसीसे भी, फिर भी गंदगी से भर जाता है।

नदी का जल प्रवाह अनेकोनेक देहात और नगरों से गुज़रकर आगे बढ़ता है। कंकड़ पत्थरों से लेकर चट्टानों तक, जीव जंतु से लेकर ऋषि-मुनि तक और वनस्पतियों से लेकर वृक्षों तक बहुत कुछ उसके मार्ग में आता है। जरूरी नहीं कि सब उस प्रवाह की सहायता ही करें। ज्यादातर चीज़ें तो गंदगी बढ़ाती हैं। परंतु निरंतर आगे बढ़ने के स्वभाव की वजह से वह सबका स्वीकार करता जाता है। कहाँ कहाँ रुकेगा वह प्रवाह! किस किस से लड़ेगा! किन किन से शिकायत करेगा! आपने देखा है हिरद्वार में बहते हुए गंगा के प्रवाह को। वो गटर का भी स्वीकार कर लेती है और पुष्पों का भी। अंत में स्थितप्रज्ञ की भांति वह प्रवाह बहा देता है शुभ अशुभ दोनों को। स्वीकार करके भी साक्षी रहना कोई जल प्रवाह से सीखे।

जल प्रवाह का एक और गुण है – शीतलता। स्वीकार और शीतलता जैसे गुण जल प्रवाह में हैं। परंतु जो मनुष्य में ऐसे गुण नहीं तो क्या कहें ऐसे मनुष्य के लिए? सुख दुःख का स्वीकार करके फिर दोनों से मुक्त हो जाना सीखो जल प्रवाह को देखकर। हीरा हो या पत्थर सबको बहा कर या तट पर छोड़ कर आगे निकल जाना सीखो जीवन में। कहीं भी चिटको मत। विकसित रहो। गतिशील रहो।

प्रिय साधको!

इतना सबकुछ मुझे क्यों कहना पड़ा? इसलिए कहना पड़ा कि प्रकृति उसके स्पष्ट रूप में हमारे सामने होने के बावजूद भी मनुष्य प्रकृति का फायदा उठाना या उसे नष्ट करना ये दो ही काम सीख रहा है। कभी कभी तो वह जहाँ से फायदा हो रहा है उसको ही नष्ट कर रहा है। क्या हो गया है मनुष्य को!

सब प्रकृति को बचाने की बातें करते हैं, बचाता कोई नहीं है। भारत में दो ही चीज़ घट रही हैं। राजनेता पर्यावरण सुरक्षा की बड़ी बड़ी बातें करते हैं और बड़ी भीड़ खूब तालियाँ बजाती है। राजा और प्रजा दोनों बातों से खुश हैं। ऐसे माहौल में केवल आध्यात्मचित्त का मनुष्य ही कुछ कर सकता है। मैं एक ऐसे समाज का निर्माण करना चाहती हूँ कि जहाँ बातें कम हों और

परिणाम ज्यादा हो। पुरुषार्थ ज्यादा है।

मैं एक ऐसा विश्व देखना चाहती हूँ जहाँ प्रशंसा और आत्मप्रशंसा के स्थान पर प्रोत्साहन, जाग्रति और पुरुषार्थ का दर्शन हो। ऐसे समाज निर्माण के लिए परंपरागत धर्मों की बातों से नहीं चलेगा। अब एक नए धर्म की आवश्यकता है और वह है समझ का धर्म, जाग्रति का धर्म, सहयोग का धर्म, आत्मज्ञान का धर्म। और इसे प्राप्त करने के लिए मनुष्य को ध्यान धर्मा बनना पड़ेगा। मैं कहती हूँ, ध्यान को अपना परम धर्म बनने दो। वह मनुष्यता को नई दृष्टि देगा, नया जीवन देगा, नई समझ देगा, जीने का नया ढंग देगा।

मैं आपको दावे के साथ कहती हूँ कि बन जाओ नदी के बहते प्रवाह जैसे। ध्यान रहे, शरीर को नहीं बहाना है। चेतना को बहने दो, इसमें कुछ खोना नहीं है। ये तो है अस्तित्व के नियम के अनुसार चलना। जो अस्तित्व का आदर करता है, उसका आदर समग्र अस्तित्व करता है।

अब ध्यान दो इस विधि की ओर; समझ लो ढंग, कि क्या करना है – सरिता प्रवाह प्रवेश भाव ध्यान में नदी के तट पर मस्ती से बैठ जाओ। बहते हुए प्रवाह को देखते रहो। धीरे धीरे स्थूल देखना अदृश्य होता जाएगा। आपकी चेतना को प्रवाहित होने दो उस प्रवाह की गति के साथ। उस वक्त एक ही स्मरण रखना, आप शुद्ध चैतन्य स्वरूप हो। आपकी बहती हुई चेतना का यह भाव जिस क्षण में दृढ़ होगा। वही क्षण साक्षात्कार का हो जाएगा। एक ही पल में पूर्ण परमात्मा का प्रगटीकरण हो जाएगा आपके भीतर। वही सत्य होगा, वही ज्ञान होगा, वही आनंद होगा और वही ईश्वर होगा।

धरणा - २०

ओस बिंदु प्रवेश भाव ध्यान

प्रिय साधको!

जीवन में संग का बहुत महत्व है। आप किसका संग करते हो, उस पर बहुत सारी बातें निर्भर करती हैं। मैं बार बार साधकों से कहती हूँ कि कुदरत का संग करोगे तो कुदरत जैसे हो जाओगे। शब्द ब्रह्म का संग करोगे तो ब्रह्म रूप हो जाओगे। नकारात्मक विषय, वस्तु और विचार के संग में रहोगे तो ऐसे हो जाओगे।

ओस बिन्दु पर ध्यान विधि समझाने से पहले कुछ बातें करनी अनिवार्य हैं। संत तुलसी ने कहीं कहा है—

गगन चढे रज पवन प्रसंगा,
कीचई मिलई नीच जल संग।

कहने का तात्पर्य यह है कि धरा की धूल भी पवन के संग से अपनी क्षमता न होने पर भी आकाश में उड़ने लगती है। और वही धरा की धूल दूषित पानी से मिलते ही कीचड़ बन जाती है। यह संग का प्रभाव है।

ओस बिन्दु पर मुझे ध्यान विधान तो बताना ही है परंतु इसके साथ उस बिन्दु के विषय में कुछ सत्संग करना भी चाहूंगी। वैसे तो ये बातें बड़ी साधारण लगती हैं। परंतु साधारण लगती हुई कुछ दिव्य बातों की ओर ध्यान देना हम चूक जाते हैं। छोटी छोटी बातें मानकर जिन्हें हम नजरअंदाज कर देते हैं, वे बातें अहम होती हैं। आज के माहोल ने मनुष्य को केवल अर्थलक्षी ही बना दिया है। उसका चित्त पैसे के इर्द गिर्द ही घूम रहा है। जिसकी वजह से वह पैसा तो पा लेता है परंतु धन से कई गुना अधिक मूल्यवान को अथवा जो धन से नहीं खरीदी जाती ऐसी कई चीजों को खो देता है।

एक अर्थ में मैंने धनवान लोगों को भी कुछ बातों में दरिद्र देखे हैं। आंखों में पुष्प के सौन्दर्य को भरना, उनके रंगों में रंग जाना। सर्द हवा के झोंकों को छूना। समंदर की लहरों से नहाना। भीनी भीनी रेत में लेटना। चांदनी रात में झिलमिलाने

सितारों को देखना। पतंगे के पंखों में कोई अदृश्य चित्रकार का दर्शन करना। झींगुरों की आवाज में लय और संगीत का ढूँढना। जुगनू की क्षणिक रोशनी को भी देखना। ऐसा तो बहुत कुछ।

बहुत सारे धनवानों को आप पूछेंगे कि इन सब बातों का आनंद आप कब लेते हो? तो ज्यादातर आपको यही जवाब मिलेगा कि यार हमारे नसीब यह सब कहाँ? इन सब चीजों के लिए नसीब की आवश्यकता नहीं है। कोई खास पुरुषार्थ करने की भी जरूरत नहीं है। थोड़ा प्रमाद कम करके निरर्थक एषणाओं में से समय निकालकर चंद मिनिटों के लिए बैठना है प्रकृति की गोद में। उस वक्त आपको महसूस होगा कि आप विश्व के परम सुखी मनुष्य हैं। परंतु हर चीज को नगद के रूप में चाहने वाला आदमी इस सुख को नहीं ले सकता है।

ओस की बूंद पर ध्यान विधि समझाने के पहले कुदरत के इस अंश के बारे में हम कुछ चर्चा करेंगे। कभी कभी थोड़े से सत्संग से भी मनुष्य की आध्यात्मिक समझ बढ़ जाती है। मेरा काम है कुदरत और ध्यान के विषय में आपकी सही समझ को विकसित करना। उसके लिए शिक्षा और अनुभव दो मार्ग हैं। सत्संग आध्यात्मिक शिक्षा का काम करता है। यह शिक्षा ध्यान में आपकी मदद करती है। किसी भी विषय की सही समझ बढ़ने से वह विषय आसान हो जाता है।

अब जब कभी भी आप ओस बिंदुओं को देखें तब नई दृष्टि से देखना। आरंभ में मैंने कहा था, संग का बहुत बड़ा प्रभाव होता है। ओस की बूंद धरती पर गिरकर मिट्टी में मिल जाती है। ओस मिट्टी को अपना भिनापन देती है, ठंडक देती है और मिट्टी उसे अपनी खुशबू देखा, कुदरती तत्वों का यह सूक्ष्म आदान प्रदान। यह खुशबू का आत्यांतिक लाभ तो मनुष्य को ही मिलता है। परंतु आज के मनुष्य के पास समय कहाँ? बहुत सारी निरर्थक चीजों में वह अपनी नींद भी खोता है, आराम भी खोता है, और कुदरत की ओर से मिलने वाले छोटे बड़े लाभों के साथ साथ अपना स्वास्थ्य भी।

मान लो शायद यही ओस कण गर्म लोहे पर गिरेगा तो त्वरित नष्ट हो जाएगा। यही ओस कण कमल के पत्ते पर जमेगा तो मोती जैसा चमकेगा। मोती की उपमा मिल जाएगी। उसे मोती सा सौन्दर्य मिल जाएगा। यह है संग का प्रभाव। प्रिय साधको!

आप में भी कहीं भावनाओं का भीगापन है। उन भावनाओं को ऐसा माहोल और संग देना कि वे दिव्यता पा सके।

परमात्मा स्वरचित सारी सृष्टि को बहुत अच्छे ढंग से मेन्टेन करता है। पेड़, पौधे, फल, फूल और वनस्पतियों को वे नहलाते हैं ओस के द्वारा। और मनुष्य को स्नान कराते हैं भावनाओं के भीगेपन से। भीगा भीगा मौसम जैसे और सुन्दर लगता है, वैसे ही भावपूर्ण और भावों से भीगा हुआ मनुष्य दैवी और आकर्षक लगता है। गीता के सांख्ययोग में श्री कृष्ण ने भावना की महिमा पर बहुत जोर दिया है। भावनाशील मनुष्य को ही श्री कृष्ण सच्चा बुद्धिमान मानते हैं। उन्होंने कहा है कि जो मनुष्य बुद्धियुक्त नहीं है वह भावना शील नहीं होता है। जिसके हृदय में भावना नहीं होती है उसका हृदय कभी शांत नहीं हो सकता है। और जिसका हृदय शांत नहीं है, ऐसे अशांत मनुष्य को सुख कहाँ से प्राप्त होगा?

आप समझ गए होंगे कि कृष्ण जो सुख की बात करते हैं निःशंक वह सुख आत्मसुख ही है। यहाँ सापेक्ष या दुन्यवी सुख की बात नहीं है।

प्यारे साधको!

ध्यान मार्ग में भावना का तो अत्यंत महत्व है। ध्यान विषयक “भावप्रकाश” नाम के ग्रंथ में और “भावना उपनिषद्” में एवं “विज्ञान भैरव तंत्र” उपरांत अनेक ग्रंथों में मनुष्य के भाव के इर्द गिर्द ही सारी साधना पद्धतियाँ बताई गई हैं।

प्यारे साधको!

याद रहे! केवल कल्पना में और भाव में फर्क है। कल्पना क्षणिक मन से मस्तिष्क के द्वारा की जाती है। जबकि भाव में

साधक को अपनी समग्र चेतना भाव की तीव्रता के साथ एकाग्र करनी होती है।

ओस पैदा तो होती है आसमान के वातावरण में। फिर भी बारिश की भांति दृष्ट नहीं होती। भावनाएं भी ऐसी ही अदृष्ट होती हैं फिर भी हम उनका अनुभव कर सकते हैं।

ओस का जीवन वैसे तो क्षणभंगुर है लेकिन क्षणिक जीवन के दौरान भी वह दुनियाँ को और प्रकृति को शीतलता और सौंदर्य प्रदान कर देती है। और मनुष्य! लंबी जिंदगी पाने के बाद भी क्या करता है? कैसा जीता है? कैसे व्यक्त होता है? कैसे सोचता है???... ये सारे प्रश्न मैं आप पर छोड़ रही हूँ।

प्रिय साधको!

अब आइए ध्यान विधि की ओर। क्या करना है आपको ओस बिंदु प्रवेश ध्यान में? इसे समझ लीजिए। वैसे तो प्रत्येक ध्यान प्रक्रिया प्रत्येक क्रिया के पार जाने की कला है। फिर भी बात को समझाने के लिए शब्दों का प्रयोग करना पड़ता है।

जहाँ कहीं भी पुष्प, पर्ण और ओस सहजता से उपलब्ध हों, ऐसे स्थान पर प्रातः काल में आकर बैठ जाएं। मोती सी चमकती हुई ओस की बूंदों को देखो। पर्ण पर टिकी हुई कितनी सूक्ष्म! कितनी सुंदर! कितनी चंचल! फिर भी स्थिर। बिलकुल मनुष्य चित्त की भांति। पहले तो मोती जैसे चमकती उन बूंदों में से किसी एक बूंद पर स्थिर हो जाओ या दृष्टि को स्थिर कर दो। आप पर भी ओस गिर रही है तो गिरने दो, उसकी परवाह मत करो, उसे पौछो मत, शरीर की ओर ज्यादा ध्यान मत दो, आपकी अंतर चेतना को जुड़ जाने दो उस ओस की बूंद के साथ। भाव करो कि ब्रह्मांड में उस बूंद के सिवाय किसी का भी अस्तित्व है ही नहीं। कुछ ही क्षणों में जिस पर बूंद टिकी है वह पर्ण और पंखुड़ी भी अदृश्य हो जाएंगे। सूक्ष्मता से इतने विलीन हो जाओ उस बूंद में कि आप भी अदृश्य हो जाओ। केवल बूंद ही रहे। इस तीव्र भाव से आपकी चेतना बूंद रूप हो जाएगी। आपको पता नहीं है परंतु दूसरी ओर सूर्य किरणों के द्वारा एक दूसरी प्रक्रिया घट रही है। उन किरणों के प्रभाव से बूंद अदृश्य होती जा रही है। आपकी नज़रों के सामने कुछ ही क्षणों में बूंद गायब हो जाएगी। परंतु आपको पता नहीं चलेगा कि वह कहाँ गई? कैसे गई? कौन ले गया उसे? कितनी सहजता से अदृश्य हो गई वह बूंद अस्तित्व की गोद से! इतने सारे प्रश्न होने पर भी ध्यानावस्था में आपके भीतर कोई प्रश्न नहीं उठेगा। क्योंकि बूंद के साथ आप भी अदृश्य हो जाएंगे। आप पहुंच जाएंगे परमावस्था में। आप को देखकर लोगों को प्रश्न उठेगा कि उन क्षणों में आप कहाँ गए थे? कैसे गए थे? क्यों गए थे? परंतु जब तक वे लोग ध्यान में नहीं उतरेंगे तब तक उन लोगों के लिए ये सारे प्रश्न निरुत्तर रहेंगे। आपने पा ली होगी ओस बूंद प्रवेश भाव ध्यान के द्वारा परमावस्था।

धरणा - २१

पर्वत शिखरस्थ स्थिति ध्यान

प्रिय साधको!

इस विधान में पर्वत की अंतिम ऊंचाईयों पर बैठकर ध्यानस्थ होने का विधान दिया गया है। विधि को पढ़कर या सुनकर बड़ी साधारण बात लगती है। परंतु इस विधि की महिमा समझने के लिए या स्थान की असाधारणता को समझने के लिए पहले कुछ बातों को समझ लें।

हमारे ऋषि मुनि पर्वत की गुफाओं में या पर्वत की चोटी पर बैठकर ध्यान करते थे। एक अर्थ में यह स्थान ही उनका निवास था। कभी सोचा है, ऐसा क्यों?

वे लोग भगौड़े नहीं थे, साहसी थे। भगौड़ा आदमी अथवा जो खुद के अस्तित्व के लिए संघर्ष नहीं करना चाहते, ऐसे

लोग सुखी समृद्ध संप्रदाय के तथाकथित साधुओं की भीड़ का हिस्सा बन जाते हैं। जहाँ कोई प्यास, कोई खोज, कोई साधना, ध्यान, शांति, समझ, उत्साह कुछ भी नहीं दिखाई देता। वहाँ सिर्फ एक ही बात होती है, हम आपकी जिम्मेदारी ले लेते हैं, आप हमारा प्रचार करो। ये एक प्रकार का धर्म के नाम पर राजनीति और बिज़नेस है। धर्म की मार्केटिंग के मौहरे जैसे दिखाई देते हैं कुछ तथाकथित साधु।

हाँ! ग्लेमर दिखाई देगा, भोग विलास दिखाई देंगे, सुख की स्पर्धा और खेलों के झगड़े और दंगे जरूर दिखाई देंगे।

मैं मेरे साधकों से कहती हूँ कि ऐसे गुरु की ही अंगुली थामना जो केवल आपको मार्ग दिखाए परंतु आपको बांधे न रखे, अध्यात्म के आसमान में पंख खोलने के लिए आपको अवसर दे, धर्म के सही स्वरूप को आपके अनुभव के स्तर पर समझने के लिए आपको मौका और माहौल दे, बने बनाए धर्म का स्वीकार करने का आग्रह न रखे, आपको स्वयं के परमात्मा को अर्जित करने दे।

दुनियाँ के सारे रिश्ते एक बंधन है। परंतु गुरु-शिष्य का रिश्ता मुक्ति का आरंभ है। आज ऐसे गुरु की आवश्यकता है कि जरूरत पड़ तो शिष्य को थाम ले, उसे प्रेरणा दे, उसे प्रोत्साहित करे परंतु धर्म के नाम पर उसे दबोच न दे। कभी कभी ऐसा भी होता है कि कोई आध्यात्मिक क्षमतावान साधक, समूह साधना के आकर्षण से अपने आध्यात्मिक विकास के लिए एक आशा के साथ किसी संप्रदाय से जुड़ जाता है। बाद में पता चलता है, इससे तो अकेले ही चले चलना अच्छा था। ऐसी स्थितियों में क्रांति करने वाला साधक होता है तो सांप्रदायिक ढकोसले के सामने बगावत करके चला जाता है, पुनः अपनी दुनियाँ में या नई दुनिया बसा लेता है। परंतु साहस के अभाव वाला साधक कुछ समय तक घुटन सहता सहता उस परंपरा का प्राणी बनकर मुरझा जाता है। इसमें एक तीसरा और भयानक परिणाम भी आ सकता है। संप्रदाय का हिस्सा बनने की गलती जिस साधक से हो चुकी है और मजबूरी की वजह से बरसों तक जो शोषित रहा, वह फिर से धर्म के नाम पर दूसरों को मूंड कर शोषण आगे बढ़ाता है। ऐसी विकृतियाँ कैसे दे पाएंगी किसी को नवजीवन, आनंद और प्रसन्नता ?

त्यागी और भगोड़े में फर्क है। संसार की जिम्मेदारियों से भाग कर जो साधु का चोगा चढ़ा लेता है वह भगोड़ा है। और आत्मखोज के लिए जिस साधक से सबकुछ सहज ही छूट जाता है वह है त्यागी। त्याग भाव की वजह से अर्थात् आंतरिक अनासक्ति की वजह से उसमें त्याग उतरने लगता है। उसे कुछ भी जबरदस्ती त्यागना नहीं पड़ता। त्यागने के लिए कुछ यत्न नहीं करना पड़ता। जो छोड़ता है उसे कभी पकड़ने का भी मन होता है, परंतु जो छूट जाता है उस चीज का लगाव फिर से संभव नहीं है।

हम बात कर रहे थे पर्वत पर बैठकर ध्यान करने की विधि की। कुछ नासमझ या दृष्टिहीन लोगों को ऐसा लग सकता है कि ध्यान विधि समझाने में अन्य बातों की क्या आवश्यकता है ? परंतु किसी भी प्रबुद्धात्मा के पास जाने वाले साधक कोई बाजारू आदमी की तरह नहीं होते हैं, जो बाज़ार में गए चीज़ें खरीदीं वापस आ गए। कुछ लोगों को केवल चीज़ों से मतलब होता है। परंतु याद रहे, ध्यान कोई चीज़ नहीं है। वह एक गहन अनुभूति है, जिसे मनुष्य अपनी आध्यात्मिक समझ विकसित होने के बाद पूर्ण रूप से विधि में उतर कर पा सकता है।

किसी भी धर्मगुरु के पास या ज्ञानी के पास जाने वाला व्यक्ति धर्म के बारे में समग्रलक्षी समझ प्राप्त करने की अपेक्षा करता है। उसके पास स्पष्ट दृष्टि नहीं होती है। अगर आत्मदृष्टि होती तो जरूरत ही क्या है किसी सद्गुरु की ? परंतु धर्म के एक धुंधले माहौल में से बाहर आकर साधक स्पष्ट दृष्टि चाहता है, समाधान चाहता है अपने संशयों का। कुछ साधकों की आखें नहीं पूछे गए प्रश्नों से भरी हुई होती हैं। हर कोई उस आंख को नहीं पढ़ सकता। सद्गुरु का काम ही है, साधक को पढ़ लेना। यहाँ कोई धर्म का बाज़ार नहीं है। कोई दुकान नहीं है कि कोई आया और कुछ रेडीमेड चीज़ लेकर चला गया। मैं कोई

तथाकथित धर्मगुरु भी नहीं हूँ। यहाँ तो एक प्रयोगशाला है। प्रयोग में उतरो और जान लो। मैं आपके लिए एक आध्यात्मिक सहायक हूँ, मार्ग दर्शक हूँ। परंतु हूँ एक लाइव डिटेक्टर की भांति, जिसमें एक सूक्ष्म केमेरा भी है। वह केमेरा उसके निकट आने वालों को पढ़ लेता है। बिना पूछे कुछ जान लेता है, और बिना माँगे कुछ उत्तर भी दे देता है।

प्रिय साधको !

अब धीरे धीरे आइए विधि की ओर। पर्वत का इतना आकर्षण क्यों है ? क्यों है ऊंचाई का इतना आकर्षण मनुष्य के मन में ? इस आकर्षण के पीछे केवल प्राकृतिक सौंदर्य वजह नहीं है। यहाँ एक “बोडीलेस बोडी” की फिलसूफी छिपी है, शरीर के पार का शरीर। आखिर ऋषि मुनियों को क्यों था इतना आकर्षण पर्वत का ? क्यों रहते थे वे पर्वत की गुफाओं और चोटियों पर ? केवल ऋषि मुनि ही नहीं परंतु देखिए देवी देवताओं को ! सदाशिव को देखा कभी महल में रहते हुए। देवीभागवत पुराण को पढ़ेंगे तो अनेक पर्वत के शिखर और उन शिखरों की अधिष्ठात्री देवीओं का वर्णन मिलता है। ऐसा क्यों ?

पर्वत पर कोई खास सुविधा नहीं होती है। आज के स्काईस्क्रेपरों की भांति वहाँ कोई लिफ्ट की सुविधा भी नहीं थी। एक अर्थ में देखें तो पर्वत पर चढ़ना, उतरना, अस्तित्व टिकाए रखने के लिए अनिवार्य और आवश्यक चीज़ वस्तुओं को पाना या ढूँढना, पर्वत पर निवास करना यह साधारण दृष्टि से तो हर तरह से असुविधापूर्ण है। फिर भी ध्यानी, ज्ञानी, योगी, सिद्ध और देवियाँ ज्यादा से ज्यादा पर्वत पर निवास क्यों करते हैं ?

पर्वत के आकर्षण के पीछे आध्यात्मिक कारण छिपा है। पहले इसे समझ लेना चाहिए। साहसी और सहज त्यागी को मुश्किलें मुश्किल नहीं लगतीं। ऊंचाई तक पहुँचना ही संघर्ष है। उस ऊंचाई से बार बार परिचय साध लेने के बाद, वह प्रसन्नता देती है, निर्भयता देती है, आनंद देती है, सबसे ज्यादा सलामती का भाव ऊंचाई पर होता है। यह आपने कभी अनुभव किया है ?

अन्य दृष्टि से देखा जाए तो भी पर्वत की चोटी पर जाकर रहने वाले मस्त फकीर को कोई लल्लू-पंजू सहजता से खलल नहीं पहुँचा सकता। लल्लू-पंजुओं के पास आकर्षण ही कहाँ है इतना योगियों को मिलने का ? कोई साधारण आदमी, पर्वत पर बैठे हुए फकीर के एकांत में कोई खलल नहीं पहुँचा सकता। और जो ऊबड़ खाबड़ रास्तों से, पत्थरों से टकराता हुआ, धूप सहता हुआ मनुष्य ऊपर बैठे हुए महात्मा तक पहुँच जाता है, वह साधारण होता ही नहीं है। कोई खोजी ही इतना कष्ट उठा सकता है। कोई प्यासा, कोई सत्संग प्रेमी वहाँ तक पहुँचता है।

आध्यात्मिक आत्मा को ऊंचाई का आकर्षण ज्यादा होता है। हर तरह की ऊंचाईयों को छूने को उसका जी चाहता है। पार्थिवता का भार जब छूट जाता है तभी कोई ऊंचाई तक पहुँच सकता है। यहाँ प्लेन में बैठकर कुछ देर तक ऊंचाईयों पर रहकर पुनः धरती पर आ जाने की बात नहीं है। जिसका दुन्यवी आकर्षणों का सारा बोझ उतर गया हो वही मनुष्य ऊंचाईयों में स्थिर रह सकता है। मनुष्य की ऊंचाईयों का उसके शब्द, दृष्टि, व्यवहार और सोचने के ढंग से पता चलता है। आध्यात्म की परिसीमाओं पर पहुँचकर आंतरिक ऊंचाई और बाहर की ऊंचाईयों से तालमेल बैठने लगता है। वह एक ऐसी दुनियाँ है जहाँ पूरी दुनियाँ छोटी लगती है और आप बड़े। पर्वत की ऊंचाईयों पर केवल हवा ही शुद्ध मिलती है ऐसा नहीं, वहाँ की तरंगें भी विशुद्ध होती हैं, जो साधक को साधना में सहायता करती हैं।

आध्यात्मिक पुरुष का ऊंचाई के साथ पुरातन नाता है। वही मनुष्य का मूल स्वरूप है। मूल स्रोत के साथ निकटता किसको अच्छी नहीं लगती ! विराट में बहती हुई परम चेतना पृथ्वी के गुरुत्वाकर्षण के बाहर है। हम उस चेतना का ही अंश हैं। बरसों से बिछड़ गए हैं। जब भी मोड़ आ जाता है उसकी ओर जाने का, तब ऊंचाई का आकर्षण बढ़ जाता है। पर्वत की चोटी पर हिमालय पर, गिरनार पर, आबू पर इसी वजह से तो कई सिद्ध पुरुष जाकर बैठ गए हैं। वहाँ अपने मूल स्रोत से निकटता

महसूस होती है। परम ऊंचाई पर बहती हुई महाचेतना के साथ तदाकार होने के लिए साधक प्रतिपल तत्पर रहता है।

मैं आपसे कहती हूँ कि अगर पर्वत आपको बुला रहा है, असाधारण रूप से आप उसके प्रति आकर्षित हो रहे हो तो पहुंच जाओ पर्वत पर। इतिहास कहता है कि पांडव, वेद व्यास, सनकादिक, आचार्य शंकर जैसे बहुत लोगों ने अंतिम श्वास उन शिखरों के सानिध्य में लिए हैं। ये महाचेतना की पुकार नहीं तो और क्या है ?

प्रिय साधको !

अब समझ लो ध्यान विधि। जब कभी भी पर्वत का सानिध्य मिले तो उसके उच्चतम शिखर पर सुखासन में बैठ जाओ। तुरंत ही आपकी चेतना विराटता का अनुभव करने लगेगी। मन विशेष रूप से परिशुद्ध हो जाएगा। इस परिशुद्धि का अनुभव करो परम शांति से और एकांत भाव से। अगर आप के साथ में और ईर्द गिर्द में कोई हो तो भी आपके एकांत को खंडित मत होने देना। परिशुद्धता, शांति और विराटता के भाव में से अचानक ज्ञान किरण प्रगट हो जाएगा। वह परम उपलब्धि होगी।

धरणा - २२

फणिधर दर्शन ध्यान

प्रिय साधको !

लोग सांप से डरते हैं। वे उसे हिंसक प्राणी से भी खतरनाक मानते हैं। सांप को देखते ही कुछ लोग उसे मार देते हैं। इसका कारण है, मनुष्य में पड़ा हुआ हिंसा भाव और जीवन का मोह। फणिधर दर्शन ध्यान विधि बताने से पहले सर्प के संदर्भ में कुछ बातें करनी अनिवार्य हैं।

ज्यादातर लोगों को किसी भी वस्तु या व्यक्ति के एक ही पहलू को देखने की आदत होती है। दुनियां में बहुत सारी बातें ऐसी हैं कि जिसके अनेक अनेक पहलू हैं। यहाँ मुझे सांप के बारे में ज्यादा वैज्ञानिक बातें नहीं करनी हैं। परंतु कुछ प्राकृतिक और चेतना लक्षी बातें करनी हैं।

अब जब कभी आप सांप को देखो, तब एक अलग दृष्टि से देखना। मुझे सुनने के बाद सर्प को देखने की आपकी दृष्टि बदल जाएगी। सर्प की कुछ जातियाँ जहरीली हो सकती हैं लेकिन हर सांप जहरीला नहीं है। सर्प के तो केवल मुख में जहर भरा है परंतु मनुष्य की तो रग रग में है।

यहाँ मुझे अज्ञेय की कविता के कुछ शब्द याद आ रहे हैं—

सांप! तू सभ्य तो हुआ नहीं!

शहर में तो गया नहीं!

तो डंसना कहाँ से सीखा ?

विष कहाँ से लाया ? ? ?

ये एक करारा व्यंग्य है मनुष्य जाति पर। परंतु मनुष्य ऐसे व्यंग्यों का स्वीकार कर ले ये मुझे मंजूर नहीं है। मनुष्यता को ऊपर उठना होगा उसकी कमज़ोरियों से, राग द्वेष से। उसे मुक्त होना होगा ईर्ष्या के जहर से। खैर! प्रकृति ने प्रत्येक जीव को स्वबचाव के लिए कुछ न कुछ शक्ति दी है। जहरीलापन सर्प के लिए शक्ति है, मनुष्य के लिए कलंक। जहरीलेपन के डर को छोड़कर सांप के संदर्भ में दूसरा पहलू देखा जाए तो संगीत प्रियता, तल्लीनता, एकध्यानता, नृत्य, ऋजुता, कोमलता और गुप्त वास ये भी उसकी प्रकृति है।

करीब करीब ये सारे लक्षण ध्यानी, योगी, और संत में नजर आते हैं। मेरी बात को सुनकर आश्चर्यचकित मत होना। मेरी बात को समझने के लिए आपको अभ्यास करना पड़ेगा सर्पों का। उसके निकट रहना पड़ेगा। उससे दोस्ती करनी पड़ेगी। उसके मनोविज्ञान को जानना पड़ेगा। मैं रही हूँ ऐसी जगह पर, जहाँ कई बार सर्प से साक्षात्कार हुआ है। मैंने बहुत निकटता से समझा है इस जीव को। मेरे अनुभव के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि कम से कम अपनी सुरक्षा के बारे में जीव प्राणी मात्र बहुत समझदार होते हैं। उसे जब प्रतीत होता है कि आपकी ओर से उसे कोई भय कि खतरा नहीं है, आपकी उपस्थिति के बावजूद भी वे संपूर्ण सुरक्षित हैं, तो उसे अपनी आत्मरक्षा के लिए क्या जरूरत है आप पर हमला करने की ?

शब्द, संज्ञा और लिपि की भाषा से ज्यादा असरकारक है तरंगों की भाषा। शायद पशु पक्षी तरंगों की भाषा को मनुष्य से भी ज्यादा समझ सकते हैं। शब्द, संज्ञा, लिपियाँ एवं निरर्थक बुद्धि प्रयोगों की वजह से मनुष्य स्थूल आधारों पर इतना निर्भर हो गया कि सूक्ष्म की भाषा पढ़ना उसके लिए मुश्किल हो गया है। मैं कहती हूँ फिर से वापस लौट आओ अंतरजगत की ओर। बहुत हो गई बहिर्मुखी यात्रा। अब लौट आओ प्रत्याहार की ओर। शिव का, पतंजलि का, कपिल का, बुद्ध का और महावीर सबका एक ही संदेश है। वही सत्य आज मुझे अलग भाषा में दोहराना पड़ रहा है।

मैंने पशुओं को, जंगली जानवरों को, श्वानों को और सर्प जाति के विविध जीवों को देखा है, मेरी उपस्थिति में शांति से बैठे हुए। और यह केवल मेरा अनुभव नहीं है। कई संतों के इतिहास में भी ऐसा वर्णन मिलता है। एक बार मैंने पढ़ा था कि ऋषि भारद्वाज के आश्रम में सर्प, खरगोश, बिल्ली, कुत्ता, मोर, गाय और सिंह सब साथ साथ घूमते थे, खेलते थे और बैठते थे। हिंसा और वैर से भरा हुआ मनुष्य इस बात को नहीं समझ पाएगा और ना ही स्वीकार करेगा। परंतु यह बात मैंने जब मेरे बचपन में पढ़ी तब से इसका अनुभव करने के लिए मैं उत्सुक थी। संयोग से साधना हेतु कुदरत ने पर्णकुटिर में रहने का मौका दिया और कुछ अनुभव हो गए।

प्रिय साधको !

ध्यानी में अहिंसा उतर आती है। उसकी तरंगों में प्रेम और करुणा प्रवाहित होने लगती है। आपमें से बहती हुई हकारात्मक या नकारात्मक तरंगों की किरणों के मंडल को हौरा या आभामंडल कहते हैं। शास्त्रीय भाषा में उन्हें हम सत्वगुण, रजोगुण और तमोगुण की तरंगें कह सकते हैं। विज्ञान उन्हीं तरंगों को आल्फा, बीटा, थीटा आदि नामों से जानता है।

हमारे ऋषि-मुनियों ने ध्यानानुभव के बाद जो सत्य बताए हैं उन शास्त्रों की उपेक्षा करने वाले या नकारने वाले अज्ञानी लोग उसी सत्य को विदेशी भाषा में बोलते हैं। जैसे कि नीम का अर्क विदेशी लेबल के साथ भारत में बिके। कहने का तात्पर्य यह है कि अध्यात्म के संदर्भ में भारत के ध्यानी ऋषिओं ने कोई भी ऐसी बात नहीं छोड़ी है कि जिससे वे बातें कहीं और से उधार लेनी पड़ें। भारत योग और ध्यान विषय में आदि अनादि से विश्वगुरु है।

प्रिय साधको !

फणीधर दर्शन की साधना को मैंने यहाँ ध्यान विधि के रूप में लिया है। एक आध्यात्मिक विधि के रूप में लिया है। परंतु इस विधि का अधिकतम उपयोग मार्शल आर्टिस्टों ने किया है। आपको पता होना चाहिए कि मार्शल आर्ट भी कोई हिंसा या लड़ाई का खेल नहीं है परंतु वह आत्मरक्षा के लिए विकसित की गई एक कला है। इस कला का विकास, प्रचार-प्रसार और उपयोग ज्यादा से ज्यादा बौद्ध संतों के द्वारा हुआ।

आपको पता है, मार्शल आर्ट की विविध शाखाएं एवं स्टाइलों में से एक अति प्रचलित, सुंदर, कठिन और अद्भुत स्टाइल है - स्नेक स्टाइल। इस स्टाइल में फाइटर सांप के लड़ने के विविध दांव पैच के ढंगों को आत्मसात करके,

आत्मरक्षा के लिए लड़ता है।

क्या सर्प का निकट सानिध्य प्राप्त किए बिना बरसों तक सांप की जीवन शैली का अभ्यास किए बिना और सांप के मनोविज्ञान को समझे बिना ऐसी कला को विकसित करना संभव है? मुझे इतना ही कहना है, कि काम कला से लेकर ध्यान कला तक की सारी कलाएं भारत के प्रबुद्ध ऋषिओं द्वारा विकसित की गई हैं।

मार्शल आर्ट की स्नेक स्टाईल को विकसित करने वाला ऋषि अवश्य अहिंसा का पर्याय होगा। इसके बिना सांप जैसे अत्यंत संवेदनशील जीव की निकटता साधना और अत्यंत गहनतम कला को विकसित करना असंभव है। उन ऋषिओं ने मैत्री कर ली होगी सर्पों से। अपने बना लिए होंगे सर्पों को। सांप निर्भय हो गए होंगे उन ऋषिओं से। उनके बीच में बहने लगा होगा प्रेम का सूक्ष्म प्रवाह। तभी सांप का सहयोग मिला होगा उन ऋषिओं को इस कला शैली को विकसित करने में।

अब मैं एक पुरातन और सनातन बात करने जा रही हूँ। आपने देखा है शिव के चित्र या मूर्ति को? सांप सिंगार बन गए हैं महादेव का! छोटे छोटे बच्चों के भांति सर्प खेलते हैं महादेव के शरीर पर। यह कल्पना नहीं है, एक हकीकत है। शिव का अर्थ ही होता है कल्याणकारी और वही सच्चा कल्याणकारी है कि जिसके सानिध्य में प्रत्येक जीव को अपने कल्याण का अहसास हो। जिसके सानिध्य में हिंसक अपनी हिंसा को भूल जाए, यह अवस्था है शिवत्व, यही है ब्रह्मत्व, यही है महावीरत्व।

मार्शल आर्टिस्ट के सिवाय सिद्धों ने भी साधना में बहुत उपयोग किया है, सर्प का। उन लोगों ने जीत लिया है इन जहरीले जीवों को अपनी अहिंसा द्वारा। चौरासी सिद्धों की मूर्तियों में से कई मूर्तियों में सिद्ध के हाथों में आप जिंदा सर्प को देख पाओगे। आप करना चाहते हैं यह अदभुत दर्शन तो चले जाना हमारे कच्छ के आश्रम ॐकार धाम ध्यानतीर्थ में। वहाँ साधकों को प्रेरित करने के लिए चौरासी सिद्धों की प्रतिमाएं प्रस्थापित की गई हैं। लीलापा, सरहपा, धोकरीपा...

कुछ हठयोगियों ने भी यह सिद्धी प्राप्त की है। चांगदेव का नाम शायद आपने सुना होगा। वे बाघ की सवारी करते थे और जिंदा सर्प का चाबुक रखते थे। यह सिद्धी कोई आखरी या आत्यंतिक सिद्धी नहीं है, फिर भी साधक को अपनी अहिंसा विकसित करने का संदेशा अवश्य देती है।

संगीत प्रियता और नृत्य प्रियता यह सर्प का सबसे बड़ा गुण है। मशीनों की कोलाहल में मनुष्य बहरा सा हो गया है। नई पीढ़ी को छोड़कर अन्य लोग मानो नाचना और गाना भूल ही गए हैं। ऐसे लोगों से तो सर्प ज्यादा जीवंत और कलाप्रेमी लगता है। बीन की आवाज के साथ ही वह नाचने लगता है। भूल जाता है हिंसा। कितनी तल्लीनता है उसकी संगीत और नृत्य में। संगीत और नृत्य का प्रभाव ही ऐसा है। उनके ताल और स्वर शरीर के रसायनों को बदल देते हैं। जहरीले सांप के रसायन तक बदल जाते हैं संगीत से तो मनुष्य के लिए तो यह बहुत आसान है। केवल तल्लीनता के प्रयास का अभाव है।

मेरी ध्यान शिबिर में, मैं ज्यादा से ज्यादा जोर देती हूँ नृत्य और संगीत पर। निर्मल, आनंदित और सहज होने का यह सर्वश्रेष्ठ और सरल रास्ता है।

आपने देखी है कभी नटराज की मूर्ति? देखी हैं भरतनाट्यम की नृत्य मुद्राएँ कभी ध्यान से! उनमें से बहुत सारी मुद्राएँ ऐसी हैं कि जो सर्प के विविध अंग भंग जैसी लगती है। कुछ लचक और कसक-मसक हड्डीपूर्ण शरीर के द्वारा संभव ही नहीं दिखते हैं। कुछ मुद्राएँ केवल स्नायुपूर्ण शरीर से ही संभव है। परंतु नटराज के नृत्य में ये मुद्राएँ कितनी सहज रूप से उभर आती हैं! ये कोई चित्रकार की कल्पना नहीं है। सर्प की मैत्री के द्वारा पाया हुआ कलापूर्ण परिणाम है। नाट्य शास्त्र के पुरस्करता भरत मुनि के पास भी यह अनुभव अवश्य होगा।

सर्प का एक नाम चक्षुश्रवा है। वह आंखों से सबकुछ सुन लेता है। यह भी एक कुदरत का करिश्मा है। एक इन्द्रिय की कमी दूसरी इन्द्रिय के द्वारा वहाँ कुदरत ने पूर्ण कर दी है। यह बात भी साधक के सीखने योग्य है। तरंगों के बाद मनुष्य की

आंखें ही सबकुछ बोलती हैं। शब्द तो तीसरे नंबर पर आते हैं। मैं कहती हूँ कि सर्प से प्रेरणा लेकर आंखों के द्वारा सुनना भी सीख लो। अगर यह कला आपने सीख ली तो आपका बहुत सारा समय और शक्ति बच जाएंगे।

सर्प की आंख देखकर पता चल जाएगा कि वह शांत है कि क्रोधित, या शंकित परंतु हकीकत ये है कि आपकी आंख के और तरंगों के अनुसार उसकी आंख में भाव आते हैं।

एक और बात भी याद रखिए। सर्प बिल में रहता है। वह गुप्त वास है। यह भी सीखने जैसा है। साधक अकारण यहाँ वहाँ नहीं भटकता है। एकांतवास और गुप्तवास साधक को सुरक्षित, चिंतनशील और शक्तिसम्पन्न रखते हैं। मैं कहती हूँ कि दुनियां से भागो मत परंतु भीड़ का हिस्सा भी मत बनो। अपने एकांत और शांति को अखंड रहने दो।
प्रिय साधको!

ब्रह्मांड में सर्वप्रथम ध्यान मार्ग के प्रणेता और पुरस्करता ध्यानधर्मा सदाशिव ने आरंभ किया है सर्प का सहयोग लेना आध्यात्मिक विकास में। परंतु शिव सूत्र में कहीं भी इसे ध्यान विधि के रूप में नहीं पाया जाता है। साधारण साधक के लिए यह विधि है भी नहीं। परंतु अनुभव के आधार पर मैं कह सकती हूँ कि फणीधर दर्शन ध्यान विधान मैंने मेरे ध्यान शास्त्र में इसलिए दिया है कि यह विधान बहुत जल्दी साधक को निर्विकल्प अवस्था में पहुंचा सकता है। विधि कठिन अवश्य है परंतु असंभव नहीं। इस विधि में साधक की निर्भयता, अडिगता और पूर्ण रूप से विशुद्धता अनिवार्य है।
प्यारे साधको!

यह सब बातें सुनने के बाद संभव है कि सर्प को देखकर आपका भय कम हो जाए। जीव प्राणीमात्र से मैत्री भाव रखने को आप प्रेरित हों और सर्प के विषय में निरर्थक भय और भ्रामक बातों से मुक्त हो जाएं।

अब समझ लीजिए विधि को; यहाँ हमें फन उठाकर बैठे हुए सांप पर ध्यान करना है। हर सांप फन लगाकर नहीं बैठ सकता, फन लगाकर बैठने वाली जाति, नाग जाति से प्रसिद्ध है। उनके प्रमुख नौ प्रकार हैं। जैसे कि वासुकी, तक्षक, कालि, इत्यादि। इस विधि के लिए अगर आप माहौल ढूंढ सकते हो, सर्प का सानिध्य पा सकते हो, और इस विधि में रस और क्षमता हो तो जब सर्प अपने फन को उठाकर उसे फैलाकर बाकी शरीर को लपेटे मारकर मानो उसका आसन बनाकर बैठा हो तब पूर्ण शांति और अहिंसा भाव के साथ उसके सन्मुख बैठ जाओ, उसके नेत्र में नेत्र डालकर देखते रहो। आपको एक अद्भुत अनुभव होगा जो वर्णन से परे है। भाव के साथ जब आप उसकी आंखों में देखेंगे, तब वह आपको सुन लेगा और आप उसे सुन लेंगे। दोनों ओर से सिर्फ अहिंसा की आवाज ही उठेगी। वह भाषा भाव और तरंगों की होगी। जैसे ही दोनों ओर से अहिंसा और निर्भयता बहना शुरू होगी तत्क्षण चित्त स्थिर हो जाएगा। और अचानक भीतर निराकार पद का बोध जग जाएगा। सांप की चेतना और आपकी चेतना मानों एक हो जाएंगी। देह, आकार, प्रकार भिन्न रहेंगे परंतु चेतना एक होने लगेगी और उसी क्षण महाचेतना में आपका प्रवेश हो जाएगा।